योगविद्या

वर्ष 7 अंक 10
अक्टूबर 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: चातुर्मासिक हिन्दी यौगिक अध्ययन सत्र दीक्षान्त समारोह;
2–3: भारत योग यात्रा 2018 – कोलकाता;
4: भारत योग यात्रा 2018 – इन्दौर एवं राजनन्दगाँव

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सच्ची शिक्षा

मनोवेग बलवान् है, परन्तु विवेक अधिक बलशाली है। अतएव यह मनोवेग को नियन्त्रित कर सकता है। क्रोध बलवान् है, लेकिन प्रेम उससे अधिक शक्तिशाली है। अतः यह क्रोध को नियन्त्रित कर सकता है। जिह्वा बलवान् है, परन्तु बुद्धि अधिक शक्तिशाली है। इसलिए यह जिह्वा को नियन्त्रित कर सकती है। विवेक, प्रेम एवं सद्बुद्धि को विकसित करो और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करो।

निष्कपट श्रद्धा-भक्ति एवं निर्मल शुचिता सच्चे साधक की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन दो विशेषताओं के अभाव में तुम आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकते। आत्म-साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को तुच्छ एवं व्यर्थ समझो। जीवन में दिव्यता लाओ, जीवन को ईश्वरत्व की ओर अग्रसर करो। यही सच्ची शिक्षा है। अन्य सभी लौकिक शिक्षाएँ तृणवत् हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 10 • अक्टूबर 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 चंचल मन पर विजय
11 यौगिक शिक्षा का स्वप्न
15 प्राण और मंत्र
25 सत्यम् वाणी
42 यौगिक अध्ययन के अतुलनीय अनुभव
47 यौगिक समन्वय
50 दीक्षान्त संदेश

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

चंचल मन पर विजय

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अपने मन की आदतों और प्रवृत्तियों को अच्छी तरह जानना चाहिए। तभी मन पर नियन्त्रण स्थापित करना आसान होगा और तभी संकल्प को सबल, स्मृति को तीक्ष्ण और विचारों को परिशुद्ध कर सकोगे। मन की एक मुख्य आदत इधर-उधर घूमने की है। एक लक्ष्य पर जमे रहना मन के लिए असम्भव सा है। यह वायु की तरह इधर-उधर घूमता रहता है। श्रीकृष्ण से अर्जुन ने यही कहा था–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥6.34॥

'हे कृष्ण! मन चंचल है, प्रमथन करने वाला है, बली और दृढ़ है यह। इसका निग्रह वायु के समान दुष्कर है।'

इस पर श्रीकृष्ण ने कहा, 'हे अर्जुन, निस्सन्देह मन का निग्रह कठिन है और यह चंचल भी है, किन्तु निरन्तर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इस पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है।'

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥6.35॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण मन पर नियन्त्रण स्थापित करने का सुगम उपाय संक्षेप में सूचित कर रहे हैं। मन पर विजय पाने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम इच्छाओं का उन्मूलन करें और इन्द्रियों पर अपना अधिकार पूर्णतया स्थापित कर लें। मन के चंचल होने का कारण और है ही क्या–केवल इच्छा ही तो मन को व्यग्र और उद्विग्न बनाया करती है। इन्द्रियाँ विषयों के पीछे भागा करती हैं और मन इन्द्रियों का अनुसरण करता है, जैसे कुत्ता स्वामी का। विषय-पदार्थों में रमे रहने के कारण मन की वृत्तियाँ इतस्ततः बिखरी हुई रहती हैं। विषय-पदार्थों को पाने, उन पर अपना अधिकार स्थापित करने तथा उनको भोगने की इच्छा होने के कारण मानसिक शक्तियाँ छितरी हुई रहती हैं। कभी मन सुन्दर गीत सुनना चाहता है तो वह पाँव और कानों को आदेश देता है। पाँव उसे वहाँ ले जाते हैं और कानों से वह सुन्दर गीत का आनन्द लेता है।

यह क्षुद्र जीव मन और इन्द्रियों के पाश मे बँध जाता है। कुछ ही देर में जीभ कहती है, 'चलो ताजमहल होटल तक चलें। वहाँ बढ़िया कॉफी पीयेंगे।' इसी प्रकार कुछ देर में शिश्नेन्द्रिय उत्तेजित हो जाती है और मनुष्य में काम-वासना

प्रज्वलित होने लगती है। मनुष्य अंधा होकर इन इन्द्रिय-पाशों में फँसता जाता है। पाँचों इन्द्रियाँ उसे इधर-उधर भटकाती रहती हैं, उसे क्षण-भर का विश्राम नहीं मिलता। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और क्षुद्र जीव के साथ-साथ मन इसमें रमण करता है।

यदि रमण करते हुए मन पर नियन्त्रण स्थापित करना है तो सभी प्रकार की वासनाओं और इच्छाओं का त्याग कर देना होगा और इन्द्रियों पर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लेना होगा। तभी धारणा, ध्यान, स्मृति-साधना और विचार-साधना में सफलता प्राप्त हो सकती है।

जब-जब मैं उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पूर्व पंजाब तथा काश्मीर में पर्यटन के लिए गया, अनेकों शिक्षित व्यक्तियों से मिला। वे मुझसे पूछते थे, 'स्वामी जी, एकाग्रता और ध्यान किस प्रकार किये जायें? हम लोग पिछले 15-20 सालों से एकाग्रता में संलग्न हो रहे हैं और ध्यान भी करते आ रहे हैं, किन्तु सफलता अभी तक नहीं मिल पायी।'

ध्यान की वैज्ञानिक विधि

इसका कारण यही है कि वे लोग ध्यान करने का वैज्ञानिक और वैधानिक तरीका अभी तक नहीं समझ पाये हैं। उन्होंने चित्त-शुद्धि नहीं प्राप्त की है। उनमें लोक-वासना वर्तमान है। उनका मन सन्तुलित और अनुशासनबद्ध नहीं है। इन प्रारम्भिक आवश्यक साधनाओं में सफल हुए बिना ही वे असम्भव कार्य करना चाहते हैं। यह कैसे सम्भव हो सकता है? यह तो किसी हाथी को डोरी से बाँधने जैसा बचकाना प्रयास हुआ। श्रीकृष्ण ने अस्थिर मन को स्थिर करने के लिए यह उपदेश दिया है—'मन की कल्पनाओं से उत्पन्न सभी इच्छाओं को त्याग कर, चारों ओर से इन्द्रियों के व्यापारों पर नियन्त्रण स्थापित कर, धीरे-धीरे साधक को समता की प्राप्ति करनी चाहिए, और मन को आत्मा में प्रतिष्ठित करने पर और कुछ विचारना नहीं चाहिए। जब और जितनी बार अस्थिर और उत्तेजित मन भटके, उतनी ही बार उसे लगाम डाल कर अपने नियन्त्रण में ले आना चाहिए।'

इस अभ्यास से क्या फल मिलता है? जिसका मन शान्त है, जिसने अपने कामपूर्ण स्वभाव का दमन कर दिया है और जिसकी वासनाएँ जलकर राख हो चुकी हैं तथा जो दोषहीन जीवन बिता रहा है, उस योगी के लिए निर्विकार और शाश्वत आनन्द का द्वार सदा खुला रहता है।

श्रीकृष्ण के उपदेशों पर ध्यान दो—'सभी इच्छाओं को बिना किसी विचार के त्याग देना चाहिए।' प्राय: देखा जाता है कि कुछ लोग आत्म-तृप्ति के लिए अपने मन में कुछ इच्छाएँ रखे रहते हैं। उनके मन में कुछ-न-कुछ इच्छाएँ वर्तमान रहती हैं। एक गृहस्थ, जो एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास करता है, पूर्णत: इच्छाहीन हो, ऐसा हो नहीं सकता; कुछ-न-कुछ इच्छा उसमें आत्म-संतोष के लिए छिपी

हुई रहेगी। इससे होता यह है कि उन लोगों की शक्ति निचले छेद से चूती रहती है और परिणामस्वरूप वे विशेष उन्नति नहीं कर पाते हैं। अभ्यास करते-करते वे चार-पाँच सीढ़ियाँ पार कर लेते हैं, किन्तु सहसा नीचे आ गिरते हैं। मानसिक विक्षेप और मन के परिभ्रमण को रोकने के लिए परिपूर्ण वैराग्य की आवश्यकता है। इन्द्रियों का चारों ओर से दमन होना चाहिए।

इन्द्रियों में से किसी एक पर ही नियन्त्रण करना पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि सभी इन्द्रियों को सभी ओर से काबू में करना होगा। यह मुख्य विषय है, इसे नहीं भूलना चाहिए। यह जरूर है कि अभ्यास और साधना कठिन तथा परिश्रमपूर्ण हैं, किन्तु इससे हतोत्साह हो जाने की कोई आवश्यकता नहीं। साधना करते रहो और धैर्यपूर्वक उसकी प्रतिक्रिया पर भी ध्यान देते जाओ। कुछ लोगों में यह गलती होती है कि वे अत्यन्त उत्साह और धड़ल्ले से साधना आरम्भ कर देते हैं। तीन महीनों तक वे रोज छः घण्टे एकाग्रता का अभ्यास किया करते हैं, किन्तु तीन महीने बाद जब देखते हैं कि उन्हें कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं हुई, अभ्यास को त्याग देते हैं। यह बहुत बुरा काम है। तभी श्रीकृष्ण कहते हैं–'धीरे-धीरे अभ्यास करना आरम्भ करो और उस अभ्यास में नियमित रहो।' अर्थात् अभ्यास का सम्पालन नित्यप्रति करते रहो। मन को बार-बार एक लक्ष्य पर निर्धारित करना, एक बिन्दु पर केन्द्रित करना अभ्यास कहलाता है। मन की एकाग्रता को धारणा कहते हैं। एकाग्रता में मन की वृत्ति एकाकार हो जाती है।

नये साधकों के लिए एकाग्रता का अभ्यास श्रमदायक और रुचिहीन प्रतीत होता है, किन्तु एकाग्रता का विज्ञान संसार के सभी विज्ञानों से अधिक रुचिकर और लाभदायक है। जब व्यक्ति धारणा में आगे कदम बढ़ाता जाता है, जब उसे एकाग्रता के अभ्यास में रुचि होने लगती है, जब उसे एकाग्रता के लाभ स्पष्ट प्रतीत हो जाते हैं, वह अभ्यास को कदापि नहीं छोड़ता। यदि एक दिन का भी अभ्यास छूट गया तो वह विकल हो जाता है। ऐसे साधक के लिए एकाग्रता का मूल्य आँकना कठिन है। एकाग्रता उसके लिए परम आनन्द, आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति, असीमित दिव्य वैभव और अनन्त शाान्ति है। एकाग्रता के फलस्वरूप साधक को ब्रह्मज्ञान

होने लगता है, दिव्य चक्षु खुल जाते हैं और परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। तीनों लोकों में यह अपूर्व विज्ञान है। इसके लाभों को पूर्णतया दिग्दर्शित करना मेरे लिए असम्भव है।

अगर आपसे किसी कुर्सी पर मन को एकाग्र करने के लिए कहूँ तो इसका अर्थ है कि आप कुर्सी के सभी भागों का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं—कुर्सी किस लकड़ी की बनी हुई है, कौन-सा रंग उस पर चढ़ाया गया है, जुड़ाई और ठुकाई किस प्रकार से की गयी है, किस शिल्पी ने उसे तैयार किया है, इत्यादि-इत्यादि। अत: जब हम कुर्सी पर मन को एकाग्र करना चाहते हैं तो इन बातों पर अवश्य विचार करना होगा। ऐसा नहीं करने पर मन इधर-उधर घूमता रहेगा। जब मन एक लक्ष्य में तन्मय हो जाता है, उसे इधर-उधर भटकने की याद नहीं रहती, वह एकाग्र हो जाता है। पर जब तक मन को किसी एक लक्ष्य में स्थित न किया जाए, वह इधर-से-उधर भटकता रहता है।

मन का स्वभाव

यदि मन की चंचलता को ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि उसके भटकने में भी एक प्रकार का नियम है। एकाग्रता की कड़ी के बिखरे रहने पर भी सम्पर्क-भाव बना रहता है। मन एक पुस्तक की बात सोचते-सोचते किताबघर की बातें सोचने लगता है। किताबघर की बातें सोचते-सोचते वह रेलवे बुक-स्टॉल में पहुँच जाता है और फिर पुस्तक के प्रकाशक की याद करता है। बर्फ का स्मरण करते ही वह आल्प्स पर्वतों में पहुँच जाता है। चीड़ के वृक्षों की याद आते ही मन को अल्मोड़ा की याद आने लगती है और अल्मोड़े का विचार आते ही उसे स्वामी विवेकानन्द जी की याद आने लगती है, जिन्होंने मायावती में अद्वैत आश्रम की स्थापना की थी। यहाँ पर मन अद्वैतभावों में भी रम सकता है, क्योंकि उसका सम्पर्क अद्वैत आश्रम से स्थापित हो चुका है। यह भी हो सकता है कि वह वहीं से विषय-वासनाओं में चक्कर लगाने लगे। अल्मोड़ा की वेश्याओं की याद भी उसे आ सकती है। मन की शुद्धता पर विचारों की प्रणाली निर्भर रहती है।

उपर्युक्त सभी घटनाएँ क्षणमात्र में मन के अन्दर घट जाया करती हैं। मन इतनी तीव्रता से दौड़ लगाता है कि कल्पना तक नहीं की जा सकती। पहले मन एक विषय को पकड़ता है, उस पर विचार करता है और तब तज्जन्य सम्पर्क से अन्य बातें सोचने लगता है। यह भी एकाग्रता है, यद्यपि इस एकाग्रता को अविच्छिन्न नहीं कहा जा सकता। जब मन एक ही प्रकार के विचारों में रमता है, तो उसे तैलधारावत् अविच्छिन्न धारणा कहते हैं। अत: साधक को चाहिए कि विषय से अलग हट कर, दौड़ते हुए मन को बार-बार पूर्व-विषय में स्थित करे और उसी विषय-सम्बन्धी विचारों को सोचे। यह आध्यात्मिक साधना है। यह योगाभ्यास है। यह धारणा और

ध्यान है। इस साधना का पूर्ण विकास समाधि में होता है, जो अतिचेतन अवस्था है, जिसे तुरीय अवस्था भी कहते हैं।

एकाग्रता में यह बात विचारणीय है कि प्रारम्भ में मन को एक ही विषय में एकाग्र किया जाए, अर्थात् मन को एक ही बात सोचने के लिए अभ्यस्त करना चाहिए। इतना अवश्य है कि मन उस विषय से सम्बन्ध रखने वाली सभी घटनाओं और विषयों के बारे में विचार सकता है। उसे अन्यत्र नहीं जाने देना चाहिए। कुछ समय बाद, अभ्यास करते-करते मन केवल एक ही विषय के एक ही विचार को सोचने में सिद्ध हो जायेगा। अनवरत और अविचलित साधना का यही सुन्दर पुरस्कार मिला करता है।

जब हम किसी मेज का विचार करते हैं तो मेज से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों का विचार करें और मेज-सम्बन्धी जो-जो घटनाएँ अपने जीवन में घट चुकी हैं, उनका विचार करें। आज तक कितने प्रकार की मेजें देखी हैं, उन पर गम्भीर विचार कर याद करने का प्रयत्न करें कि मित्र योगेश के यहाँ की मेज में क्या विशेषता है, इत्यादि-इत्यादि। जिस प्रकार तेल की धारा एक बर्त्तन से दूसरे बर्त्तन तक अविच्छन्न रहती है, जिस प्रकार गिरजाघर की घण्टी लगातार बजती रहती है, ठीक उसी प्रकार विचार भी निर्बाध गति से बहते रहने चाहिए। एक ही विषय से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विचार हो सकते हैं, आरम्भ में उनको भी विषय के अन्तर्गत कर दिया जाए। धीरे-धीरे विषय से सम्बन्ध रखने वाले विचारों की संख्या को कम करते जायें। उनको कम करते-करते कुछ काल के बाद केवल एक ही विषय पर आ जाना चाहिए। यहाँ पर धारणा की पूर्ति हो जाती है। जब इस एक विचार का भी लय हो जाता है तब समाधि का अवतरण होता है।

जब मन में केवल एक ही विचार रहता है तो उसे 'सविकल्प समाधि' कहा जाता है। यह समाधि की निम्न अवस्था है। जब मन का अन्तिम विचार भी लय हो जाता है, जब मन में एक विचार भी नहीं रहता और जब सर्वथा विचारशून्यता आ जाती है तब मन का अत्यन्ताभाव हो जाता है। यह मानसिक शून्यता है। इस स्थिति को महर्षि पतंजलि के शब्दों में 'निर्विचार' की अवस्था घोषित किया गया है; किन्तु साधक को तो इस स्थिति से भी ऊपर जाना है, जहाँ वह ब्रह्मदर्शन कर सकेगा और असीम शान्ति की प्राप्ति भी। जब वह इस अवस्था की प्राप्ति कर लेगा, तभी कहा जा सकता है कि चरम स्तर पर पदार्पण कर दिया गया है।

मन तो जड़ वस्तु है, किन्तु अधिष्ठान आत्मा से जीवन-ज्योति पाकर चैतन्यवत् दिखलायी देता है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में रखा गया जल सूर्य की गर्मी से गरम हो जाता है, उसकी अपनी स्वतन्त्र गरम सत्ता नहीं होती, उसी भाँति मन जड़ होते हुए भी ब्रह्म से जीवन-संचरण प्राप्त कर चैतन्य वस्तु के समान ही आभासित होता है। बुद्धि का प्रतिबिम्ब मानस-प्रदेश में बिम्बित होने पर मन सक्रिय और

चेतन प्रतीत होता है। सत्यद्रष्टा ऋषियों ने यही कहा था। यहाँ पर हम यह कहना नहीं भूलते कि पश्चिम के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक अभी अन्धकार की खाई में ही हैं, अभी तक उनको अज्ञान ने ही दबा रखा है। उनका कहना है कि विचार और मन से परे कुछ नहीं है, बुद्धिवाद ही जीवन की चरम सीमा है। हम उनसे और क्या कहें, केवल यही कि 'तुम जो-कुछ सोचते हो, सोचते जाओ। तुम्हारा जो-कुछ भी विश्वास है, उसी पर अपने को स्थिर रखो। किन्तु कभी-न-कभी तुम्हें सत्य को अंगीकार करना होगा, अन्य मार्ग है ही कहाँ?' सच पूछो तो मन आत्मा के समान स्वयंभू और स्वयंज्योति नहीं है। वह तो आत्मा से प्रकाश लेकर प्रकाशित हुआ दिखता है। आत्मा सूर्यों का सूर्य और सभी प्रकाशों का परम प्रकाश है। शास्त्रों ने उसे परम ज्योति, अनन्त ज्योति और स्वयंज्योति के नाम से सूचित किया है।

व्यावहारिक निर्देश

दुबारा अपने पूर्व-प्रसंग की ओर चलें। जब हम कुर्सी पर मन को एकाग्र करने का अभ्यास करते हैं तो अन्य वस्तुओं के विचारों को मन के अन्दर न आने दें। यदि मन अस्थिर होकर इधर-उधर भाग भी रहा है तो उसे बार-बार वापस ले आते रहें। गुलाब के फूल पर मन को एकाग्र करना चाहें तो केवल गुलाब की ही भावना में तन्मय हो जाना चाहिए। किसी पुस्तक पर अपने विचारों को स्थिर कर रहे हैं तो पुस्तक के अलावा किसी का विचार न किया जाए। किसी एक वस्तु का विचार करने पर दूसरी वस्तु की कल्पना को अपने मन के अन्दर न आने दें और यदि मन अपने लक्ष्य से भागने लगे तो उसे बार-बार उसी लक्ष्य पर ले आयें।

जितनी देर तक हो सके, उस विषय पर विचार करते रहो। इसके लिए अपना प्रिय विषय चुन लिया जाए, किन्तु ध्यान रहे कि वह विषय अशुभ और अशुद्ध न हो। हाँ, आदर्शवादी हो सकता है, कोई हानि नहीं। एक समय पर केवल एक ही काम करना और वह भी सफलता के साथ, तब वह एक ही श्रेयस्कर है।

जब भी अपने हाथों में कोई काम लो, उसकी सफलता के लिए अपना पूरा तन-मन लगा दो। पूरे दिल से काम करो। एकाग्रता से काम करो। एकाग्रतापूर्वक काम करने से 6 घण्टे का काम केवल आधे घण्टे में सुविधापूर्वक किया जा सकता है। यह यौगिक प्रक्रिया है। एकाग्रतापूर्वक कार्य करने से पूर्ण योगी बन जाओगे।

इसी प्रकार अध्ययन भी पूरे ध्यान से करो। मन को भटकने न दो। बाहरी शब्दों से मन को अछूता रखो। केवल लक्ष्य पर ही दत्तचित्त रहो। आँखों को भी इधर-उधर न दौड़ने दो। अध्ययन करते समय खाने-पीने या मित्रों की बातें न सोचा करो। उतनी देर के लिए सारा संसार मन से अदृश्य हो जाना चाहिए। एकाग्रता हो तो इस प्रकार की। यह असम्भव नहीं, किन्तु अभ्यास पर निर्भर है। कुछ काल तक निरन्तर अभ्यास करते रहने से और धैर्यपूर्वक व्रत दृढ़ रहने से एकाग्रता का अवतरण हो जायेगा। देर भी हो तो दु:खी और हताश नहीं होना चाहिए। शान्ति और धैर्य से प्रतीक्षा करो। तक्षशिला का निर्माण क्या एक ही दिन में हुआ था? हथेली पर रखते ही क्या दही जम जाता है? प्रत्येक कार्य के लिए समय की आवश्यकता है। समय की पूर्ति होते ही सफलता का अवतरण होता है, पर अभ्यास एक दिन के लिए भी नहीं छूटना चाहिए, चाहे आप बीमार ही क्यों न हों। असफलता, यदि निराशावाद की जननी न हुई तो सफलता की वर्णमाला है। ठोकर खाकर ही तो बच्चा चलना सीखता है, तुतलेपन के अन्दर ही तो मानव की वाणी का रहस्य अन्तर्निहित है। निर्बलता नवीन साहस और शौर्य का सुप्रभात लायेगी। अत: कमर कस लेनी चाहिए और निराशा को दूर भगा देना चाहिए। उत्साह और शौर्य के साथ आगे बढ़ना चाहिए। ज्योतिर्मय भविष्य हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। अभ्यास करना आरम्भ कर दो, अनुभव करो, आनन्दित हो। योगी बनकर विश्व पर शासन करो।

मैं तुम्हें इसके लिए योग्य बना दूँगा। मेरी बात सुनो। सच्ची लगन के साथ यह काम आरम्भ कर दो। जाग जाओ। ज्योति की किरणें फूट रही हैं। अमरत्व की सन्तानों, जागो! ब्रह्ममुहूर्त का आरम्भ हो रहा है। साढ़े तीन बजने वाले हैं। एकाग्रता के अभ्यास का यही सुन्दर और अनुकूल समय है। स्मृति और संकल्प-शक्ति के विकास का यही स्वर्ण अवसर है। मन को अच्छी तरह काबू में रखने के लिए यही मंगलमय घड़ी है। वीरासन में बैठकर सच्चे दिल से अभ्यास आरम्भ कर दो। सफलता की प्राप्ति अवश्य करोगे। मन को ब्रह्म में लीन कर दो; ज्ञान, आनन्द और परम शान्ति की प्राप्ति करो।

यौगिक शिक्षा का स्वप्न

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

देश की संस्कृति को कायम रखने के लिए ही संत जन्म लेते हैं, आदिकाल से यह हमारी परम्परा रही है। लेकिन अब राष्ट्रों के बीच संघर्ष चल रहा है। मानव मन के अन्दर उथल-पुथल मची हुई है। उसके बाह्य तथा आन्तरिक जीवन में संग्राम छिड़ा हुआ है, कहीं कोई सामंजस्य नहीं है। अपने देश भारत में अव्यवस्था है, कुंठा का भाव छाया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी संस्कृति की अच्छाइयों को जीवित रखने वाले संत-महात्माओं की परम्परा समाप्त हो गयी है।

हम अपनी संस्कृति को किस प्रकार पुन: स्थापित करेंगे? राजनेता इसे पुनर्जीवित नहीं कर सकते, न ही अर्थशास्त्री और न समाज-सुधारक, क्योंकि वे सब इस कार्य के निष्पादन की एक अनिवार्य शर्त को पूरा करने में असक्षम हैं। तुम दूसरों को तब तक नहीं सुधार सकते जब तक स्वयं को न सुधार लो। तुम दूसरों को तब तक शुद्ध नहीं कर सकते जब तक स्वयं को शुद्ध न कर लो। केवल संत इस शर्त को पूरा कर सकते हैं। चारों ओर फैले अन्धकार के बीच आधुनिक जगत् की बुराइयों के प्रत्युत्तर के रूप में वे ही योग के प्रखर प्रकाश को फैलाते हैं। अब एक नये आध्यात्मिक युग के आगमन का समय आ गया है।

मनुष्य व्यर्थ ही जीवन की क्षणभंगुर चकाचौंध के पीछे भागता है। इसके बदले उसे उसकी खोज में जाना चाहिए, जो नाशवान् नहीं, बल्कि अनश्वर है। जब तक मानव क्षणभंगुर वस्तुओं के पीछे भागता रहेगा तब तक न व्यक्ति को, न समाज को और न ही देश को मुक्ति मिलेगी। हम आध्यात्मिक तत्त्वों को जितना अपनायेंगे, हमारा विकास उतना अधिक होगा। इसीलिए भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक रूप से उन्नत संतों को श्रद्धेय माना जाता है।

हम लोग अपने दैनिक कार्यों में अत्यधिक ऊर्जा व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। योग हमें अन्तर्मुखी करके ऊर्जा को नष्ट होने से बचाने में सहायता करता है। जब हम अन्तर्मुखी होते हैं तब मन में जमे असंख्य पूर्व जन्मों के संस्कार लुप्त होने लगते हैं। योग केवल आसन, प्राणायाम, हठयोग इत्यादि नहीं, ये तो योग के विभिन्न अंग हैं। ये एक लक्ष्य को प्राप्त करने के साधनमात्र हैं, और वह लक्ष्य है मनुष्य की गुप्त क्षमताओं को प्रकट करना।

जीवन में सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् को प्रकट करना हमारे लिए आदर्श उद्देश्य होना चाहिए। यही मानवता के सर्वोत्तम गुण हैं। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति, वह कहीं भी हो और कोई भी हो, योग का अभ्यास कर सकता है। हम ऐसा नहीं मानते कि संसार से दूर रहने वाले संन्यासियों को ही योग का लाभ होता है। इसलिए हम सम्पूर्ण विश्व में योग का प्रचार करने के लिए निकल पड़े हैं। हम युवा और वृद्ध, दोनों को अपने जीवन को पूर्णत: योगोन्मुख करने के लिए कहते हैं।

गुरुकुल में शिक्षा के प्राचीन एवं आधुनिक विचारों का समन्वयन

इसे ध्यान में रखते हुए और अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की प्रेरणा से हम लोग गुरुकुल जैसी शैक्षिक संस्था स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें शिक्षा के प्राचीन एवं आधुनिक विचार समन्वित होंगे, जहाँ बच्चे संत-महात्माओं से शिक्षा प्राप्त करेंगे। वह शिक्षा ही क्या जो विश्व-बन्धुत्व तथा वसुधैव-कुटुम्बकम् के भावों को पोषित न कर पाये? वही सच्ची शिक्षा का लक्ष्य है। क्या शिक्षा का अभिप्राय केवल डिग्री प्राप्त करना या जीविकोपार्जन करना है? नहीं, हम विद्यार्थियों को इस प्रकार शिक्षित करेंगे कि वे अपनी सभी प्रसुप्त क्षमताओं एवं प्रतिभाओं को प्रकट कर सकें।

शिक्षा केवल अपनी आजीविका चलाने, डिग्री-डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए नहीं है, बल्कि संसार के एकीकरण के लिए है। हम स्कूल-कॉलेजों में जो कुछ भी सीखते हैं, उनके द्वारा हमें विश्व की एकता का प्रयास करना चाहिए जिससे सारे मतभेदों का विलय हो जाए। ईसाई, हिन्दू या मुसलमान मूलत: ईसाई, हिन्दू या मुसलमान नहीं हैं, बल्कि सबसे पहले हम आत्मा हैं, परमात्मा के एक अंश हैं, इसे हमें समझना चाहिए।

यही वेदान्त का संदेश है—आत्मा एक है, एक ही तत्त्व, चेतना और सत्य प्रत्येक मनुष्य में व्याप्त है और उसे अनुप्राणित करता है। शिक्षा का यही आधार होना चाहिए। वेदान्त हमें विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा देता है, इसलिए शैक्षिक संस्थाओं में कम-से-कम एक वेदान्त-सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तक अवश्य होनी चाहिए। वेदान्त मात्र एक शुष्क दर्शन नहीं बल्कि एक व्यावहारिक विज्ञान है जो हमारी चेतना को उस एकता को देखना और अनुभव करना सिखाता है जो सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधती है।

आप विभिन्न धर्म स्थापित कर सकते हैं और उनके विभिन्न नाम रख सकते हैं, लेकिन धर्मों का मूल तत्त्व नहीं बदलता। धर्म लोगों से आरम्भ होता है; लोग चले जाते हैं, धर्म जीवित रह जाता है। आप धर्म को विनष्ट नहीं कर सकते। हमें प्रयास करना चाहिए कि धर्मों के आपसी मतभेद समाप्त हो जाएँ, तभी सारी वसुधा एक कुटुम्ब का रूप ले पाएगी। सारे राजनैतिक, जातीय, सैद्धान्तिक और धार्मिक विवादों को मिटाना होगा। इसके लिए हमें अपने शैक्षिक संस्थानों से भरपूर लाभ उठाना है, और अपने शैक्षिक पाठ्यक्रमों को इस प्रकार तैयार करना है ताकि वह दिन आये जब 'एक विश्व' का नारा सत्य सिद्ध हो जाए।

इस वेदान्तिक दृष्टि का विकास योग शिक्षा के माध्यम से होना चाहिए। हमारे स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकें उन लोगों के द्वारा लिखी जानी चाहिए, जिन लोगों को मानव मनोविज्ञान का ज्ञान है। उन्हें ऐसे दूरदर्शियों द्वारा लिखा जाना चाहिए जो आज से तीस-चालीस वर्ष आगे के समय को ध्यान में रखते हुए उस पर विचार कर सकते हैं। आज पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के लिए एकाधिकार प्राप्त करने की जो होड़ लगी रहती है उसे समाप्त करना चाहिए। शैक्षिक संस्थानों में ध्यान की यौगिक विधियों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए ताकि हमारे छात्रों के अवचेतन में दबे संस्कारों को निर्मुक्त किया जा सके और मानव व्यक्तित्व के सर्वोत्तम पक्ष को प्रकट किया जा सके।

हमें स्वयं को इस उद्देश्य के लिए समर्पित कर देना चाहिए, केवल वैचारिक रूप से नहीं, केवल धन-सम्पत्ति देकर नहीं, बल्कि बिना किसी प्रतिबन्ध या बिना किसी शर्त के। यह एक महान् विचार है। जब हम ईश्वर के उपकरण बन जाते हैं तब क्या होता है? जब जल की एक बूँद समुद्र में गिरती है तब एक चमत्कार होता है, वह चमत्कार है समुद्र का बूँद में प्रवेश करना।

जब हम अपनी सीमाओं एवं त्रुटियों पर विजय पा लेंगे, उन कठिनाइयों से उबर जाएँगे जो आज हमारे सामने खड़ी हैं, तब हमें शान्ति प्राप्त होगी; ऐसी शान्ति जो हमारी समझ से परे है, वह शान्ति नहीं जिसे हम आज समझ रहे हैं, बल्कि निर्वाण जैसी शान्ति, जीवनमुक्त की शान्ति। हमने बहुत लम्बे समय तक अज्ञानपूर्ण जीवन व्यतीत कर लिया है। अब हमें अज्ञान को दूर करने का संकल्प

लेना चाहिए। हम सब ईश्वर की संतान हैं। जिस प्रकार एक शिशु चलना सीखता है तो अपने माता-पिता के फैलाये हुए हाथों की ओर एक-एक कदम आगे बढ़ाता है, ठीक उसी प्रकार हमें भी पूर्ण समर्पण के साथ एक-एक कदम आगे बढ़ना है। हमें किसी भी छोटी या बड़ी समस्या को अपना मार्ग बाधित नहीं करने देना है।

बाह्य चीजें हमारी मदद नहीं कर सकतीं, क्योंकि प्रकटीकरण अन्दर होना है, बाहर नहीं। संसार की समस्त निधि और धन-सम्पत्ति हमारे अन्दर है। ईश्वर के नाम से बड़ा उपहार क्या हो सकता है? अपने मन को सतत् भगवन्नाम से जोड़े रखो। स्वयं को उससे कसकर बाँधे रखो, यही सर्वश्रेष्ठ साधना है, पर जो मानव मन की समझ से परे है। बौद्धिक दृष्टि से नाम केवल कुछ अक्षरों का समूह है, लेकिन वास्तव में नाम की चमत्कारी शक्ति को बुद्धि नहीं समझ पाती है। यह हमारी समस्त अविद्या को दूर कर देता है। सदियों से हमारे संतों का ऐसा अनुभव रहा है। यही कारण है कि स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि ईश्वर के नाम का जप और कीर्तन करना सबसे बड़ी साधना है।

शिक्षा का मूल्य

कुछ सिपाही चीन के एक हिस्से में यात्रा कर रहे थे। एक दिन रात को वे सब एक सूखे नाले के निकट ठहरे। थके-मांदे रात को जब वे सो रहे थे तो अचानक उन्हें ये शब्द सुनाई दिये– 'इस नाले की तह से मुठ्ठी भर कंकड़-पत्थर उठा लो और ले लो उन्हें अपने साथ। इससे तुम्हें सुख भी होगा और दु:ख भी।'

सिपाहियों ने वैसा ही किया और सवेरा होते-होते वे फिर से अपनी यात्रा पर चल पड़े। दोपहर जब वे भोजन के लिए एक जगह वृक्ष के नीचे ठहरे तो एक सिपाही ने जेब से वे कंकड़-पत्थर निकाले। उसने देखा वे पत्थर नहीं, हीरे-जवाहरात थे। दूसरे सभी सिपाहियों ने अपनी जेबें टटोलीं तो सबने देखा उनके पास भी हीरे-जवाहरात थे। तब उन्हें रात को सुने वे शब्द याद आए। उस समय तो वे इसका अर्थ नहीं समझ सके पर अब अर्थ स्पष्ट हो गया था। वे खुश थे कि उन्हें हीरे-मोती मिले और दुखी थे कि क्यों मुट्ठी भर ही लिए।

ठीक ऐसा ही सुख-दु:ख शिक्षा से भी जुड़ा होता है। स्कूल-कॉलेज में सारी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, अध्ययन के लिए उत्तम ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं, लेकिन विद्यार्थी प्राय: उनमें से हीरे-मोती नहीं चुनते। कहानी-उपन्यास पढ़ने, मित्रों के साथ गपशप करने और सिनेमा जाने में ही अधिक रस लेते हैं। फिर उनकी शिक्षा, यह मुट्ठी भर शिक्षा उन्हें सुख देती है और दु:ख भी। सुख तो यह है कि कुछ तो उन्होंने सीखा ही, और दु:ख यह कि सारी सुविधाएँ रहते भी उन्होंने उस समय का, उस परिस्थिति का सदुपयोग नहीं किया, पूरा लाभ नहीं उठाया।

प्राण और मंत्र

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सम्पूर्ण सृष्टि में ध्वनि एवं प्राण के बीच एक अन्तर्निहित सम्बन्ध है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब प्रसुप्त चेतना के क्षेत्र में पहली हलचल हुई और महाप्राण प्रकट हुआ तब ध्वनि भी अस्तित्व में आ गयी। ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की प्रथम गति के साथ ही प्रथम ध्वनि, ॐ की उत्पत्ति हुई। इस अतीन्द्रिय ध्वनि को नाद भी कहते हैं, जो उच्चतम स्पन्दन वाली ध्वनि होती है। नाद से ही देश, काल और वस्तु की उत्पत्ति हुई। वैज्ञानिक संदर्भ में इसे 'बिग बैंग' यानि ब्रह्माण्ड की सृष्टि के समय हुए भयंकर विस्फोट की ध्वनि से सम्बद्ध किया जा सकता है।

प्रकट होने के लिए अव्यक्त तथा अविभाज्य को रूप और आकार ग्रहण करना पड़ता है। ध्वनि इसका पहला स्वरूप थी और यह ऊर्जा या प्राण के माध्यम से अस्तित्व में आयी। चूँकि सृजन की प्रक्रिया में प्राण एवं नाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय स्तर पर भी ध्वनि ही प्राण-शक्ति के संचरण का सर्वोत्तम साधन है। इसीलिए प्राण विद्या में प्राय: शक्तिसम्पन्न ध्वनियों के रूप में मंत्रों का उपयोग किया जाता है।

मंत्र क्या हैं?

मन के विभिन्न स्तरों का अन्वेषण करने के क्रम में योगियों ने ध्यान की उच्च अवस्थाओं में मंत्रों की खोज की। सामान्यत: ध्यान में भौतिक स्तर से आगे जाना

कठिन होता है। कुछ प्रयास करके मन की वृत्तियों को नियंत्रित करने के बाद मानसिक और बौद्धिक स्तरों तक पहुँचा जा सकता है, लेकिन आत्मा के क्षेत्र तक बहुत कम पहुँच पाते हैं। योगी उस स्तर तक जा चुके हैं और आत्मा के शाश्वत आलोक की अनुभूति प्राप्त कर चुके हैं। उस अवस्था में ऐसे स्पन्दनों को सुना जा सकता है जिन्हें इन्द्रियों द्वारा सुन पाना सम्भव नहीं है।

सामान्यत: एक विशेष दायरे के अन्तर्गत आने वाली ध्वनियों को ही सुना जा सकता है। यदि ध्वनि की आवृति इस दायरे से अधिक या कम हो तो उसे नहीं सुना जा सकता। चेतना की गहन अवस्था में व्यक्ति ग्रहणशील हो जाता है तथा बहुत-कुछ सुनने और देखने लगता है। जो वह सुनता है, वे मंत्र होते हैं और जो वह देखता है, वे यंत्र होते हैं। कुछ भी अक्षरों को मिलाकर उनका उच्चारण करने से वह मंत्र नहीं हो जायेगा। योगियों ने जिन मंत्रों की खोज की, वे व्यक्तित्व के सभी आयामों में विशेष आवृत्तियों वाली स्पन्दनशील ध्वनियाँ थीं। उन्होंने प्रत्येक ध्वनि को विशेष चक्र से भी सम्बद्ध पाया। उदाहरण के लिए, 'ॐ' मन्त्र को आज्ञा चक्र के बीज मंत्र के रूप में, 'हं' को विशुद्धि, 'यं' को अनाहत चक्र, 'रं' को मणिपुर चक्र, 'वं' को स्वाधिष्ठान और 'लं' को मूलाधार के बीज मंत्रों के रूप में पहचाना गया।

योगियों ने चेतना की विशिष्ट अवस्था में पाया कि एक विशेष ध्वनि के उच्चारण से चक्र प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव एक लम्बी रस्सी को वृक्ष के तने से बाँधकर उसे हिलाने से उत्पन्न प्रभाव के समान होता है—तरंगें रस्सी के एक छोर से दूसरे छोर तक चलती जाती हैं। इसी प्रकार जब एक विशेष आवृत्ति वाली ध्वनि को बोलकर या मानसिक रूप से दोहराया जाता है तब ध्वनि तरंगें चक्र तक पहुँचती हैं और उसे सक्रिय बनाती हैं। इसलिए योगियों ने कुछ ध्वनियों को एक साथ संयुक्त कर दिया ताकि वे चेतना की एक विशेष अवस्था उत्पन्न कर सकें। चेतना के विभिन्न आयामों को जाग्रत करने तथा चेतना के विशिष्ट क्षेत्रों में ज्ञान एवं रचनात्मकता का विकास करने के लिए मंत्र आध्यात्मिक साधना का अंग बन गये।

हर मंत्र के छ: भाग होते हैं। सबसे पहले ऋषि होते हैं, जिन्हें उस मंत्र के माध्यम से आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने उस मंत्र को दूसरों को दिया। उदाहरण के लिए, ऋषि विश्वामित्र गायत्री मंत्र के ऋषि हैं। हर मंत्र एक छंद में होता है, यह मंत्र का दूसरा भाग है। तीसरा, मंत्र के एक इष्ट देवता होते हैं। चौथा, इसका सार तत्त्व होता है, बीज। पाँचवाँ भाग इसकी अपनी शक्ति है। छठा है मंत्र में छुपा इसका कीलक, जो चेतना को उन्मुक्त करता है। सतत् और दीर्घ उच्चारण के द्वारा चैतन्यता का अनावरण होता है।

अधिकतर लोग मंत्र की शक्ति को नहीं समझते और सोचते हैं कि मनचाहे तरीके से उसका उपयोग किया जा सकता है। कुछ लोग किसी शब्द या नाम का मंत्र के रूप में उपयोग करते हैं। जैसे, कोई व्यक्ति किसी महान् व्यक्ति के प्रति

श्रद्धावान् हो और उसके नाम का मंत्र बनाना चाहता हो। वह उस व्यक्ति को अपने गुरु या ईश्वर के रूप में मानता हो और उसके प्रति अत्यधिक भावुकता तथा प्रेम से ओतप्रोत हो। वह उसके नाम को दुहराते रहना चाहता हो, फिर भी वह नाम केवल भावाविष्ट ध्वनि है, प्राण-शक्ति से आविष्ट मंत्र नहीं।

मंत्र की शक्ति का अनुभव करने के लिए मंत्र-गुरु से दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक होता है। कहीं से सुने हुए या किसी पुस्तक से प्राप्त हुए शब्द या शब्द-खण्ड का उच्चारण पर्याप्त नहीं होता। मंत्र के लिए सही उच्चारण, स्वर-शैली, एकाग्रता तथा मंत्र से सम्बद्ध मानसिक छवि या स्वरूप की स्थापना आवश्यक होती है। इसके इष्ट, बीज, शक्ति और कीलक को सिद्ध करना होता है, और जिसने इन सबको सिद्ध कर लिया है वही सफलतापूर्वक इसकी शक्ति का उपयोग कर सकता है। इसलिए दीक्षा पर बल दिया जाता है। हालाँकि कुछ सार्वभौमिक मंत्र होते हैं, जैसे, ॐ या गायत्री, जिनका दीक्षा के बिना भी उपयोग किया जा सकता है।

प्राण से संबंध

विज्ञान के अनुसार ध्वनि एक विशेष आवृत्ति का कम्पन है, और इसमें जीव में भौतिक परिवर्तन लाने की क्षमता होती है। कुछ कम्पन हानिकारक होते हैं, जबकि दूसरे लाभदायक होते हैं। ध्वनि को इतना केन्द्रित किया जा सकता है कि वह किसी वस्तु को छिन्न-भिन्न कर दे। मात्र ध्वनि के उपयोग से ठोस धातु में छिद्र किये जा सकते हैं। अनेक गुह्य विद्याओं का आधार मंत्र विज्ञान ही रहा है। मंत्र की शक्ति और सूक्ष्म ध्वनि की आवृत्तियों की जानकारी का उपयोग युगों से प्राचीन सभ्यताओं के द्वारा आन्तरिक चेतना को जाग्रत करने तथा प्रकृति की बाह्य शक्तियों पर प्रभाव डालने के लिए किया जाता रहा है।

प्राण-साधना में मंत्र के उपयोग के पीछे ध्वनि एवं ऊर्जा के अन्तर्निहित सम्बन्ध का सिद्धान्त है। ऊर्जा की प्रत्येक गति से ध्वनि उत्पन्न होती है और प्रत्येक ध्वनि में ऊर्जा स्थित होती है। मंत्रों के उच्चारण से प्राण प्रेरित होते हैं, और पहले से विद्यमान प्राण-धाराओं की दिशा या तो बदल जाती है या प्रबल हो जाती है। फलस्वरूप प्राणमय कोश में सामंजस्य आता है। मंत्र मन की गहराइयों में प्रवेश करने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार सामान्य शब्दों के विपरीत, जो केवल मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों पर असर डालते हैं, मंत्र विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों को भी प्रभावित करने में सक्षम होते हैं। मंत्र चेतन मन के स्तर पर नहीं, बल्कि मन की गहराइयों में कार्य करते हैं। एक बार जब चेतना के गहन स्तरों में सामंजस्य की अनुभूति प्रारम्भ हो जाती है तब यह बाह्य और आन्तरिक, दोनों क्षेत्रों में संचरित होने लगती है। यही कारण है कि बहुत-से लोग कीर्तन करते समय उल्लास, आन्तरिक बल और प्रेरणा का अनुभव करते हैं।

मंत्र का उच्चारण प्राण की अनावश्यक गति को अवरुद्ध कर देता है ताकि ऊर्जा सुरक्षित रहे तथा मन का बिखराव नियन्त्रित रहे। एकाग्रता सघन हो जाती है और मन का उपयोग उच्च आरोहणों के लिए किया जा सकता है। इसीलिए जब मंत्र के साथ प्राणायाम किया जाता है तब वह अधिक लाभप्रद होता है। अंकों की गिनती से भी एकाग्रता प्राप्त हो सकती है, और इसी के साथ प्राणायाम के अभ्यास आरंभ कराये जाते हैं, लेकिन जब मंत्र के साथ अभ्यास कराया जाता है तब चेतना ऊँचे स्तर पर चली जाती है और एकाग्रता भी बेहतर हो जाती है, जिससे पूरा अभ्यास विशिष्ट स्तर का हो जाता है।

वास्तव में प्राणायाम एवं मंत्र का एक शक्तिशाली संगठन बनता है। जब प्राण की सहायता से मंत्रों को शरीर के विभिन्न भागों में ले जाया जाता है तब वे शारीरिक संरचना और क्रिया में वास्तविक परिवर्तन ला सकते हैं। प्राण विद्या में चिकित्सा के लिए मंत्रों का उपयोग दूसरों में प्राण-शक्ति का स्थानान्तरण करने के लिए किया जाता है। यद्यपि इस प्रकार की चिकित्सा केवल वे लोग कर सकते हैं जो मंत्र साधना द्वारा मंत्र-सिद्धि प्राप्त कर चुके हों।

तांत्रिक मंत्र विशेष प्राणिक शक्तियों का वहन करते हैं और इनका उपयोग सुनिश्चित नियमों के अनुसार एवं विशेष उद्देश्यों के लिए होना चाहिए। इन्हें तांत्रिक गुरु के मार्गदर्शन में ही सीखना चाहिए। ज्वर उतारने, विष का प्रभाव दूर करने, रोगों से मुक्त करने, संज्ञाशून्यता लाने, बाधाओं को दूर करने, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने, किसी को आकृष्ट करने, स्वास्थ्यवर्धन, सम्पत्ति प्राप्ति, अच्छी नींद लाने, विवाह, संतान और दीर्घ आयु के लिए अलग-अलग मंत्र होते हैं। हालाँकि इन मंत्रों के समुचित उपयोग के लिए इन्हें सावधानीपूर्वक सीखना आवश्यक है। स्पर्श चिकित्सा द्वारा शरीर के किसी विशेष अंग का उपचार करने के लिए प्रभावित अंग पर हाथ फेरते हुए मंत्र का उच्चारण किया जाता है।

प्राणायाम में मंत्र का उपयोग

पूरक, कुम्भक तथा रेचक को लयबद्ध करने के लिए प्राणायाम के साथ विशेष मंत्रों का उपयोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मंत्र के मानसिक उच्चारण की

सहायता से गिनती और अनुपात को कायम रखा जाता है। इस प्रयोजन के लिए गुरु मंत्र या सार्वभौमिक मंत्र सोऽहं या ॐ का उपयोग किया जा सकता है। वैसे गायत्री मंत्र इसके लिए सर्वोत्तम है, क्योंकि यह प्राणायाम में होने वाले श्वसन के अनुरूप होता है।

गायत्री मंत्र ब्रह्माण्डीय प्राण का प्रतिरूप होता है। यह चौबीस अक्षरों से बना है जिसमें प्राण का सम्पूर्ण स्वरूप समाया हुआ है। पूरक के साथ चौबीस अक्षरों का उच्चारण करना व्यक्तिगत क्षमता का आदर्श माना जाता है। कुम्भक और रेचक को इसी प्रकार किया जा सकता है। हर व्यक्ति प्राणायाम अभ्यास के आरंभ में इस प्रकार गायत्री मंत्र का उपयोग तो नहीं कर सकता, लेकिन नियमित अभ्यास से फेफड़ों की क्षमता बढ़ती जाती है, और तब गायत्री मंत्र को आराम से श्वास के साथ समकालिक बनाया जा सकता है।

इस प्रकार किया गया गायत्री प्राणायाम अपने आप में एक पूर्ण अभ्यास होता है। ॐकार या प्रणव प्राणायाम को भी अनेक शास्त्रों में सम्पूर्ण अभ्यास माना जाता है। प्रत्येक प्राणायाम की गति को बनाये रखने के लिए और उसकी अनुभूति को अधिक गहरा बनाने के लिए उसके साथ ॐ का उच्चारण प्रभावकारी ढंग से किया जा सकता है। स्वामी शिवानन्द जी ने इस प्रकार ॐ का उपयोग करने का सुझाव दिया है, किन्तु विशेष साधनाओं के लिए बीज मंत्रों का उपयोग भी प्राणायाम के साथ किया जाता है। इसे हमेशा गुरु के निर्देशों के अन्तर्गत ही करना चाहिए। जब अजपा जप का अभ्यास उज्जायी प्राणायाम के साथ किया जाता है तब श्वास की स्वाभाविक ध्वनि, सोऽहं का उच्चारण मंत्र के रूप में किया जाता है।

जब प्राणायाम के साथ मंत्रों का उपयोग किया जाता है तब अभ्यास प्राणमय कोश की ओर निर्दिष्ट नहीं होता, बल्कि इससे गहन एकाग्रता की स्थिति आती है, जो राजयोग में वर्णित ध्यान और समाधि की ओर अग्रसर करती है।

गायत्री मंत्र

चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र का मौलिक स्वरूप जो ऋग्वेद में विद्यमान है, इस प्रकार है–

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥3.62.11

प्रारंभ में गायत्री के मौलिक स्वरूप का प्रयोग करना चाहिए। पूरक, कुम्भक और रेचक को गायत्री के मानसिक उच्चारण के अनुसार समायोजित कर लेना चाहिए। प्रारंभिक प्राणायाम के लिए एक गायत्री मंत्र का उच्चारण एक पूरक के साथ होना चाहिए। कुम्भक के दौरान मंत्र का उच्चारण दो बार होना चाहिए। रेचक

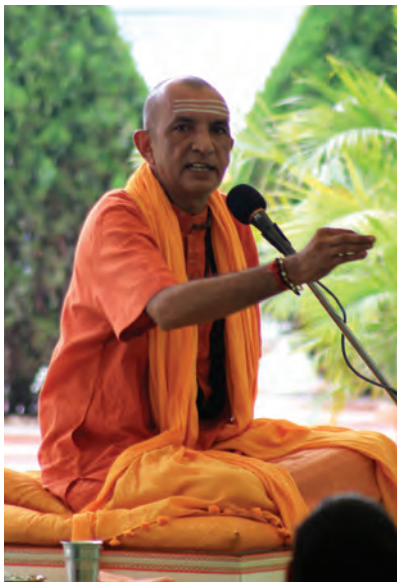

के समय भी मंत्र को दो बार दुहराना चाहिए। प्राणायाम के उच्च अभ्यास के लिए इस अनुपात को धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है।

गायत्री केवल एक सूत्र या शब्दों का संयोजन नहीं है। वेदों और उपनिषदों में बारम्बार कहा गया है, 'ॐ नाद है; गायत्री प्राण है।' गायत्री की उत्पत्ति ॐ से हुई है। ध्वनि सिद्धान्त के अन्तर्गत ॐ नाद का प्रतीक है। सृजन के क्रम में इस ध्वनि का और आगे विकास हुआ। ॐ मंत्र का विकसित स्वरूप ही गायत्री है। हमारी गुरु-परम्परा का कहना है कि मूल मंत्र ॐ ही है, क्योंकि यही सार्वभौमिक बीज मंत्र है। यह अत्यन्त शक्तिशाली आवाहन है और कभी-कभी साधक इसके फलस्वरूप होने वाली अनुभूति को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं रहता। इसलिए मनीषियों ने ॐ के मृदु स्वरूप के अन्वेषण हेतु चिन्तन-मनन किया, और मंत्र के रूप में गायत्री प्रकट हुई, जिसका अभ्यास सामान्य लोग बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के कर सकते हैं।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार प्राण के तीन रूप होते हैं। अत: प्राण की इष्ट देवी के रूप में गायत्री को उषाकाल में एक सरल, अबोध बालिका के रूप में; दोपहर में एक आकर्षक, पूर्णरूपेण विकसित नवयौवना के रूप में, और संध्याकाल में ज्ञान से परिपूर्ण प्रौढ़ा विदुषी के रूप में देखा जाता है। प्रात:काल गायत्री का रंग उदीयमान सूर्य के समान लाल; दोपहर में सुनहला और संध्याकाल में धूम्र-धूसर जैसा होता है। ये प्राण की विशेषताएँ हैं, जिन्हें गायत्री के विभिन्न रूपों में दर्शाया गया है। गायत्री के साधक प्रतिदिन अपने तीन संध्या वन्दनों में उनका इन्हीं रूपों में अन्तर्दर्शन कर सकते हैं।

गायत्री का उल्लेख 'वेद माता' के रूप में होता है और गायत्री मंत्र मानवजाति के प्राचीनतम साहित्य, ऋग्वेद में दृष्टिगत होता है। इसका तात्पर्य यह है कि दीर्घकाल से मनुष्य गायत्री मंत्र का पाठ करता आ रहा है। इस मंत्र के पाठ पर कोई निषेध नहीं है, क्योंकि इसका प्रभाव सर्वथा हितकर होता है। भारत में आठ वर्ष के बच्चों को उपनयन संस्कार के अनुष्ठान के साथ गायत्री मंत्र, प्राणायाम एवं सूर्य नमस्कार के अभ्यास की दीक्षा दी जाती है। गायत्री मंत्र का नियमित अभ्यास प्राणमय कोश को

समन्वित और जाग्रत करने में सहायता करता है, ताकि प्राणायाम के उन्नत अभ्यास और प्राण विद्या जैसी अन्य प्राणिक विधियाँ अधिक प्रभावकारी हों।

ॐकार प्राणायाम

उपनिषद् कहते हैं कि ॐ आद्या ध्वनि है। प्रत्येक वस्तु ॐ से ही उत्पन्न हुई है और प्रलयकाल में पुन: ॐ में समा जायेगी। माण्डूक्योपनिषद् में कहा गया है–

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं
भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

ॐ शब्द ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। प्रत्येक वस्तु जो भूत, वर्तमान और भविष्य में विद्यमान है, वह ॐ है, और जो त्रिकालातीत है, वह भी ॐ है।

ॐ मंत्र का उपयोग विभिन्न अभ्यासों में विभिन्न प्रकार से किया जाता है। शास्त्रों में प्राणायाम के साथ इसके उपयोग के लिए विशेष निर्देश दिये गये हैं। योग चूड़ामणि उपनिषद् में ॐकार या प्रणव प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

रेचक: पूरकश्चैव कुम्भक: प्रणवात्मक:।
प्राणायामो भवेदेवं मात्राद्वादशसंयुत:॥
मात्राद्वादशसंयुक्तौ निशाकरदिवाकरौ।
दोषजालमबध्नन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभि: सदा॥

'पूरक, कुम्भक और रेचक स्वयं प्रणव हैं। प्राणायाम का इस प्रकार अभ्यास बारह चक्रों तक करना चाहिए। इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों के द्वारा बारह चक्र अशुद्धियों के जाल को खोल देते हैं। योगियों को यह सदा ज्ञात होना चाहिए।'

उपर्युक्त श्लोकों में पूरक, कुम्भक और रेचक को प्रणव की ध्वनियों–'अ', 'उ' एवं 'म' के साथ समकालिक करने का निर्देश दिया गया है ताकि श्वास, प्राण एवं चेतना में तालमेल बैठाकर उनके परस्पर सम्बन्ध का अनुभव किया जा सके। इस प्रकार, पूरक करते समय इड़ा मार्ग या बायीं नासिका से श्वास के साथ 'अ' की ध्वनि को अन्दर लेना है। इस दौरान 'अ' ध्वनि की सभी सम्बद्धताओं–चेतन अवस्था तथा रजो गुण के साथ उसका मनन करना चाहिए। कुम्भक के समय अवचेतन अवस्था और सत्त्व गुण के साथ 'उ' ध्वनि के सम्बन्ध का ध्यान करना चाहिए। रेचक के समय श्वास के साथ 'म' ध्वनि को पिंगला मार्ग या दायीं नासिका से बाहर की ओर ले जाना चाहिए। इस समय 'म' ध्वनि का मनन अचेतन अवस्था और तमो गुण से सम्बद्ध करके करना चाहिए। इसी प्रक्रिया को दायीं ओर से भी किया जाता है ताकि एक चक्र पूरा हो।

शरीर और मन को संतुलित करने के लिए तथा प्रणव पर ध्यान करने की तैयारी के लिए ॐकार प्राणायाम के बारह चक्रों का अभ्यास करने का परामर्श दिया जाता है। दोनों नासिकाओं से बारी-बारी से बारह चक्रों का अभ्यास करने पर इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों के अवरोध तथा उनकी अशुद्धियाँ दूर हो जायेंगी। इसके फलस्वरूप स्वास्थ्य, सामंजस्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति होगी। इसलिए उपनिषद् कहता है कि योगियों को सदा इस अभ्यास का ज्ञान होना चाहिए, ताकि वे इसे नियमित रूप से करें और इसका लाभ प्राप्त कर सकें।

बीज मंत्र

बीज में सृष्टि अव्यक्त अवस्था में स्थित होती है। यदि बीज को अनुकूल परिस्थितियों में बोया जाता है, तो यह एक पौधे के रूप में प्रस्फुटित होता है। उसी प्रकार बीज मंत्र एक बीज के समान है, जो जप के अभ्यास के क्रम में विविध अनुभवों के रूप में प्रकट होता है। जब बीज मंत्र प्रकट होता है, तब यह ध्वनि, शब्द या नाद कहलाता है। प्रकट अवस्था में इसमें कम्पन होता है, लेकिन इसकी एक अवस्था ऐसी भी होती है जिसमें यह बिना कम्पन के ही स्थित रहता है। यह अव्यक्त ध्वनि ही बीज कहलाती है और इसका प्रकट स्वरूप नाद कहलाता है। जब योगी गहरे ध्यान की अवस्था में जाता है, तब उसे बीज मंत्र की सूक्ष्म ध्वनि का ज्ञान प्राप्त होता है।

पहला बीज मंत्र ॐ है। तीन आद्या ध्वनियाँ, 'अ', 'उ' एवं 'म' मिलकर ॐ की ध्वनि उत्पन्न करती हैं। इस प्रथम बीज मंत्र से अन्य बीज मंत्र उत्पन्न हुए हैं। बीज मंत्र अत्यंत शक्तिशाली होते हैं, क्योंकि ये मानसिक प्रक्रियाओं के साथ शीघ्र ही एकात्म हो जाते हैं। लम्बे मंत्र भी बीज मंत्र के समान ही प्रभावशाली होते हैं, लेकिन उन्हें एकात्म होने में समय लगता है। उदाहरणार्थ, जब ॐ मंत्र का अभ्यास किया जाता है, तब साधक सहज ही ध्यान की स्थिति में आने लगता है। दूसरा उदाहरण है 'ह्रीं' मंत्र का, जिसका कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होता, लेकिन यह प्राणों और कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करता है।

बीज मंत्र आनन्दमय कोश में स्थित होते हैं और जब मन अचेतन स्तर तक आरोहण करता है, तब ये प्रकट होने लगते हैं। ये पहले आनन्दमय कोश को प्रभावित करते हैं और इनका प्रभाव क्रमश: विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्तत: अन्नमय कोश तक पहुँचता है। इस स्थिति में चेतना की गहराइयों में विस्फोट होता है। अन्य मंत्रों से विस्फोट मानसिक या प्राणिक स्तर पर होता है और इनका प्रभाव ऊपर विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोश तक आता है। उसके बाद यह पुन: भौतिक शरीर की ओर प्रवर्तित होता है। अन्ततोगत्वा प्रभाव समान ही होता है, लेकिन जब अचेतन मन सीधे प्रभावित होता है तब अनुभूतियाँ अद्भुत और सुस्पष्ट

होती हैं। हालाँकि, यदि साधक तैयार नहीं रहे, तो वह बीज मंत्रों के प्रबल प्रभाव को सँभाल नहीं पायेगा। इसलिए इनका उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

यदि गुरु का परामर्श हो तो मानसिक रूप से बीज मंत्र के उच्चारण के साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। घेरण्ड संहिता में ऋषि घेरण्ड ने विशिष्ट प्राणायामों के अभ्यास के साथ बीज मंत्रों का वर्णन किया है। उन्होंने नाड़ी शोधन प्राणायाम के तीन प्रकार बताये हैं, जिनमें प्रथम दो में बीज मंत्रों का उपयोग किया जाता है। पहले प्रकार का उद्देश्य नाड़ियों का शुद्धिकरण करना है। इसमें विभिन्न तत्त्वों पर एकाग्रता के साथ यं, रं, ठं और लं बीज मंत्रों का उपयोग किया जाता है। दूसरे अभ्यास में, जिसे उन्होंने सगर्भ कुम्भक कहा, अ, अं, उ और मं बीज मंत्रों का उपयोग सम्बद्ध देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव), गुणों (रजस्, सत्त्व एवं तमस्) तथा वर्णों (लाल, श्याम और श्वेत) के साथ किया जाता है।

अजपा जप

जप में यदि 'अ' उपसर्ग लगा दिया जाए तो इसका अर्थ हो जाता है, मंत्र की अनायास पुनरावृत्ति की प्रक्रिया। ध्यान के समय जप अजपा में परिवर्तित हो जाता है, मंत्र स्वयं अनायास दुहराया जाने लगता है। जब ध्यान जप पर अधिक-से-अधिक एकाग्र होता जाता है, तब साधक का सम्पूर्ण अस्तित्व मंत्र से स्पंदित होने लगता है। जप के लिए मंत्र को बोलकर या मानसिक रूप से निरंतर, चेतन प्रयास के साथ जपने की आवश्यकता होती है, लेकिन अजपा सहज है, इसलिए इसमें किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। जप मुँह से निकलता है, जबकि अजपा

श्वास एवं हृदय से उत्पन्न होता है। जप मंत्रोच्चार का प्रारम्भिक अभ्यास है और अजपा इस अभ्यास की पराकाष्ठा है।

अजपा जप का अभ्यास श्वास की स्वाभाविक ध्वनि पर केन्द्रित होता है—श्वास लेने की ध्वनि 'सो' और श्वास छोड़ने की ध्वनि 'हं'। इसमें उज्जायी प्राणायाम के माध्यम से श्वसन किया जाता है। अभ्यास के विभिन्न चरणों में विविध ऊर्जा मार्गों की अनुभूति होती है और धीरे-धीरे वे सक्रिय होते जाते हैं। प्राण विद्या और क्रिया योग के लिए प्रारम्भिक अभ्यास के रूप में अजपा जप अति आवश्यक है। हालाँकि यह स्वयं भी अपने आप में एक पूर्ण साधना है, जो समाधि की अनुभूति की ओर ले जाती है। अन्य सभी योगाभ्यासों में समाधि की प्राप्ति के लिए श्वास को नियन्त्रित और रुद्ध करना पड़ता है, जबकि अजपा जप के अभ्यास में श्वास अनवरत तथा स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। समाधि के दौरान भी कोई परिवर्तन नहीं आता है। गीता में वर्णित प्राण एवं अपान का सम्बन्ध अजपा की ओर ही संकेत करता है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्धवा प्राणायामपरायणाः॥4.29॥

'कितने ही योगीजन अपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते हैं।' प्राण अन्दर आने वाली श्वास है, अपान बाहर निकलने वाली श्वास। 'सो' प्राण का और 'हं' अपान का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ साधक प्राण और अपान को संयुक्त कर देते हैं, अर्थात् 'सो' और 'हं' को एक कर देते हैं, जो 'सोऽहं' हो जाता है। अन्य साधक अपान को प्राण के साथ मिला देते हैं, अर्थात् 'हं' के साथ 'सो' को मिला देते हैं, जो 'हंसो' बन जाता है। कुछ साधक ऐसे हैं जो प्राण एवं अपान, दोनों को अवरुद्ध कर देते हैं।

घेरण्ड संहिता में अजपा जप की एक विशेष विधि का वर्णन किया गया है जिसे केवली प्राणायाम कहा गया है। इसमें कहा गया है कि एक सामान्य व्यक्ति निरन्तर अजपा करता है, लेकिन अचेतन रूप से, जबकि योगी को इसे सचेतन होकर, एक अभ्यास के रूप में करना चाहिए। दिन में आठ या कम-से-कम तीन बार 'सोऽहम्' मंत्र का उच्चारण एक निश्चित गिनती तक दोनों नासिकाओं से शीघ्रता के साथ करना चाहिए। श्वास की गति सामान्य से दुगुनी होनी चाहिए, अर्थात् 30 श्वास प्रति मिनट। जप की संख्या को तब तक धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए, जब तक केवल कुम्भक, अर्थात् श्वास के अनायास अवरुद्ध होने की अवस्था प्राप्त न हो जाये।

उपनिषदों में कहा गया है कि साधक को ऐसे जप का अभ्यास करना चाहिए जो कभी समाप्त न हो। यह अजपा जप के अभ्यास के माध्यम से किया जाता है, जिसमें मंत्र को श्वसन प्रक्रिया के साथ समन्वित किया जाता है और इस प्रकार इसकी सजगता निरंतर बनी रहती है।

सत्यम् वाणी

वैदिक मत के अनुसार स्त्री परिवार की वरिष्ठ सदस्या मानी जाती है। पहले के जमाने में परिवार मातृमूलक होते थे, पुत्र का नाम माता से ही जुड़ा होता था—विनता का पुत्र वैनतेय, अंजनी का पुत्र आंजनेय, देवकी के पुत्र देवकीनन्दन। उस समय मातृमूलक सभ्यता थी, बच्चे की जात माँ के नाम से जानी जाती थी। मगर हर देश में सभ्यताएँ आती हैं और जाती हैं। आक्रमण होते हैं, राजा बदलते हैं, तो समाज भी बदलता है। फिर पितृमूलक सभ्यता आई। पारसी, मुसलमान और ईसाई—ये पितृमूलक हैं, इनके यहाँ भगवान ही होते हैं, भगवती नहीं होतीं।

हम लोगों के यहाँ भगवान और भगवती, दोनों होते हैं। देवी भागवत में ऐसा लिखा है कि इस सृष्टि का निर्माण करने वाली आद्याशक्ति है। उससे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश पैदा हुये हैं। उस शक्ति को जगत्-जननी बताया गया है, जगत् को पैदा करने वाली। आखिर हमको पैदा करने वाली माँ ही तो है न, बाप तो नहीं है। बाप तो निमित्त है। प्रजनन तो माँ करती है। इसलिये आद्याशक्ति को जगत्-जननी कहकर पुकारा गया, और उस शक्ति के क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, ये तीन रूप होते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति से तीन देवताओं को पैदा किया। देवी भागवत पढ़ लेना, उसमें एकदम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। देवी भागवत एक पुराण है, उसमें सब विद्या लिखी है। पूजा की विधि लिखी है, भस्म बनाने की विधि लिखी है, यज्ञ करने की विधि लिखी है, पंचाग्नि की विधि लिखी है। हम जो पंचाग्नि करते थे, देवी भागवत के अनुसार करते थे।

मातृमूलक के बाद पितृमूलक समाज आया, सब कुछ बाप पर चलने लगा, स्त्रियों के अधिकार कम हो गए। दो सौ साल पहले तक यूरोप के लोग महामूर्ख थे। इनके यहाँ औरतों को बाहर नहीं जाने देते थे। हम लोगों के यहाँ कम-से-कम औरतें बाहर घूमने तो जाती हैं, मजदूरी करती हैं, उनके यहाँ तो बाहर जाने ही नहीं देते थे। दो सौ साल पहले इनके समाज का भी यही हाल था। फिर चार बड़ी घटनाएँ हुईं जिसकी वजह से उनकी स्त्रियाँ स्वतन्त्र हो गईं।

पहली चीज, ये लोग वहाँ से अमेरिका चले गये। दूसरी चीज, पहला विश्वयुद्ध हुआ जिसमें लाखों जवान लड़के मरे और लड़कियाँ विधवा हो गईं। सारा देश उनको खुद चलाना पड़ता था। दूसरे विश्वयुद्ध में करोड़ों मरे, सब अठारह-बीस-पचीस साल के लड़के। लड़कियाँ विधवा हो गईं, अपने को संभालना पड़ा। और चौथी चीज, सिग्मण्ड फ्रॉयड की मनोवैज्ञानिक विचारधारा। इन चार वजहों से इनकी सभ्यता में लड़कियाँ स्वतन्त्र हुईं।

अभी यूरोप में जो समाज है यह प्राचीन ईसाई समाज नहीं है। पहले यूरोपियन समाज ऐसा नहीं था। वहाँ तो लड़कियाँ गलत ढंग से चलें तो पत्थर से मारते थे। उनके यहाँ विधवाओं को काला कपड़ा पहनाते थे, वे किसी दूसरे आदमी से बात नहीं कर सकती थीं। काला कपड़ा पहनी किसी विधवा को किसी लड़के से बात करते हुये देख लिया तो गाँव के लोग उसको मैदान में लाकर पत्थर से मारते थे। केवल दौ सौ सालों में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया। अमेरिका में गये, वहाँ समाज का कोई अंकुश था नहीं। उन लोगों ने वहाँ जाकर नया समाज बनाया। आज की जो पाश्चात्य सभ्यता है उस पर ईसाई धर्म का कोई खास असर नहीं है। उन पर सबसे ज्यादा असर है वैदिक सभ्यता का। गीता, उपनिषद्, भगवद्-भजन—यही सब करते रहते हैं वे लोग।

उनकी तुलना में यहाँ स्त्री का दर्जा कभी भी पिछड़ा नहीं रहा। स्त्री की अपनी अलग सम्पत्ति थी, जो आज स्त्रीधन के नाम से जानी जाती है। दो सम्पत्तियों पर स्त्री का अधिकार माना जाता था। पिता के घर से जो लाती थी वह स्त्रीधन होता था। ससुराल में जो था उस पर भी बराबर अधिकार था। केवल पुरुष कर्ता नहीं था, पत्नी भी कर्ता होती थी। यह संहिताओं में लिखा हुआ है। सन्तान पर उसका अधिकार था। वैदिक धर्म के अनुसार 24 प्रकार की सन्तान होती हैं। उनको सन्तान के रूप में कानूनी दर्जा दिया गया है। एक सन्तान तो है औरस, जैसे तुम हो, इसके अलावा अलग-अलग ढंग से सन्तान पैदा होती है, उन सब सन्तानों को कितना-कितना अधिकार था, इसके नियम बने हुए थे। शास्त्रों में पढ़ लेना। इतनी स्वतन्त्रता थी स्त्रियों की उस समय।

विवाह में भी स्वतंत्रता थी। स्वयंवर की प्रथा रही है। स्वयंवर का मतलब क्या होता है? खुद चुनना। लड़की चुनती थी अपना पति। पौराणिक काल में सुकन्या

CLUB
VERDE VISTA
by CONCLAVE
YOGA
Shivir

स्वयम् को जानो योगोत्सव भारत योग यात्रा, इन्दौर-2018
सत्यानंद योग, बिहार योग

नाम की राजकुमारी हुई। उसने च्यवन ऋषि से शादी की थी जो बूढ़े थे, उसकी उम्र से कम-से-कम 70 साल बड़े थे। पर उसने निर्णय ले लिया। तब च्यवन ऋषि ने औषधि बनाई, अपने शरीर को पुष्ट किया। वही औषधि आज च्यवनप्राश के नाम से जानी जाती है।

आधुनिक मनोविज्ञान

आज के युग में मनोविज्ञान की विभिन्न धाराएँ हैं। एक धारा फ्रॉयड के विचारों पर चलती है। उनके बाद हुए कार्ल युंग और उनके ही समकालीन थे पावलोव रूस में। ये मनोविज्ञान की अलग-अलग धाराएँ हैं। युंग अधिकतर हमारे भारतीय वैदिक विचारों से प्रभावित था, जबकि फ्रॉयड शुद्ध भौतिकवादी, पदार्थवादी था। अन्तर दोनों में यह है कि फ्रॉयड का मनोविज्ञान केवल यौन सम्बन्धों पर ही आधारित था, जबकि युंग बोलता था कि मनुष्य के अन्दर पवित्रता भी है। फ्रॉयड कहता था, मनुष्य के अन्दर सब कुछ गन्दा है, सब कचरा है और कार्ल युंग कहता था, नहीं, कचरा भी है और अच्छा भी है। मनुष्य के अन्दर कीचड़ भी है, कमल भी है। यह मौलिक अन्तर था दोनों में।

कर्मों का सिद्धान्त

घर में जितनी भी बिजली की चीजें हैं, चाहे बल्ब हो, हीटर हो, पंखा हो, सब एक ही जगह से, एक ही बिजलीघर से जुड़ी हैं। वहाँ बिजली बंद तो सब जगह बंद, वहाँ चालू तो सब चालू। उसी तरह से एक ईश्वर, एक आत्मा सब में है। बस

तुम्हारा सर्किट अलग है, इनका अलग है, सबका सर्किट अलग है। मगर आत्मा की जो धारा सब जीवों में, सब प्राणियों में जाती है, वह तो एक है। एक ही तत्त्व सबमें है। तुम्हारा तत्त्व, हमारा तत्त्व अलग नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि तुम्हारा सर्किट और हमारा सर्किट, तुम्हारा कर्म और हमारा कर्म अलग-अलग है। अब हम अपना सर्किट ऑफ कर देते हैं तो हमारा शरीर ऑफ हो गया। बिजली चलती रहे, मगर बिजली हमारे बल्ब में नहीं है, क्योंकि हमने उसको ऑफ कर दिया है। वह कर्म है। मनुष्य के अपने-अपने कर्म होते हैं।

कोई आदमी बहुत अच्छा है, परन्तु उसको बहुत कष्ट है तो लोग कहते हैं यह तुम्हारे पूर्वजन्म का कर्म है?

नहीं, पूर्वजन्म को समझाना इतना सरल नहीं है। किसी आदमी के सुख-दु:ख, कष्ट-बीमारी को देखकर तुम बोल दो कि पूर्वजन्म में इसने अच्छा या बुरा किया था, यह तो तुम्हारी अपनी परिभाषा है। क्यों? तुम दु:ख को खराब समझते हो, तुम मृत्यु को अप्रिय समझते हो, तुम विपत्ति को बुरा मानते हो, तुम निर्धनता को पसन्द नहीं करते हो। तुम्हारी कोई निन्दा करता है तो तुम बुरा मानते हो, मगर यह तो तुम्हारी अपनी भावना है। क्या मालूम यह ठीक हो मनुष्य के उद्धार के लिए? इसलिये सन्त-महात्माओं ने कहा भी है–

सुख के माथ सिल परे, नाम हृदय से जाए।
बलिहारी वा दु:ख की, पल-पल नाम रटाए॥

मतलब दु:ख सन्त-महात्माओं के लिये एक आशीर्वाद बनता है। बीमारी आखिर क्यों होती है? आदमी को बीमारी बुरी लगती है, लेकिन बीमारी इसलिये होती है कि तुम्हारे शरीर की गन्दगी साफ हो। जब बुखार आता है तो इसका मतलब क्या होता है? तुम्हारे अन्दर मशीन कहीं पर खराब है, उसकी सफाई बुखार के द्वारा होती है। पर तुम दवा खाकर बुखार को रोक देते हो। कैन्सर हो या जो भी बीमारी हो, वह मनुष्य के अन्दर की अशुद्धियों को बाहर निकालने का उपाय है। जैसे टट्टी मनुष्य के शरीर की गंदगी को बाहर निकालने का उपाय है, वैसे रोग एक निकास है मनुष्य के शरीर की गंदगी का। उसी तरह दु:ख मनुष्य के मन की गंदगी का निकास है।

इसलिये पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को समझना इतना सरल नहीं है। अब मान लो, हमको बहुत सुख है। हमारा एक पुत्र है, उसे कॉलेज-यूनिवर्सिटी में पढ़ाते हैं, फिर उसकी शादी धूमधाम से करते हैं। पर शादी के बाद वह हमें छोड़कर चला जाता है। पहले हमें उससे सुख मिला, अब बहुत दु:ख मिल रहा है। तुम जानते हो न, पुत्र प्राय: पूर्वजन्म का बैरी होता है जो अपना कर्जा लेने के लिये आया है। तुम उसका भुगतान कर रहे हो, पक्की बात मान लो। नहीं कर रहे हो क्या? दिनभर

उसके लिए मेहनत करते हो, कमाते हो, दु:खी होते हो, चिन्ता लगी रहती है। वह तुमसे अपना कर्जा वसूल कर रहा है, और कुछ नहीं। इसी तरह स्त्री पूर्वजन्म में तुम्हारी मित्र थी या शत्रु थी? इन बातों को थोड़ा अच्छी तरह से सोचो-समझो।

कहते हैं कि पति-पत्नी का रिश्ता जन्म-जन्म का होता है?

यह सब पण्डित लोग कह देते हैं, शास्त्र में ऐसा कुछ नहीं लिखा है। शास्त्र कोई बेवकूफ नहीं कि जन्म-जन्म के लिए पति-पत्नी को एक साथ बाँध कर रख दे। औरत मर गई, मर्द तीस साल और जीता है। तो जब तक वह दूसरा जन्म न ले, क्या औरत वेटिंग रूम में प्रतीक्षा करेगी? यह तर्कसंगत नहीं है। यह सब कहने की बात है, मगर वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है।

जन्म क्या है, पुनर्जन्म क्या है, आत्मा क्या है, कौन जाता है, कैसे जाता है, किस लोक को जाता है, कर्म किसको कहते हैं और कर्म कब पैदा होता है—ये सब गूढ़ प्रश्न हैं। आज पालक लगाओ, तीन महीने में खा लो। आज आम लगाओ तो छ: महीने तक मिलने का नहीं, पक्की बात है। आज कटहल का पेड़ लगाओगे तो अगले साल फल नहीं मिलेगा। इसी तरह से कुछ कर्म सद्य:फलित होते हैं, तुरन्त, तत्काल। कुछ कर्म विलम्ब से फलते हैं। वास्तव में कर्म विलम्ब से फलित नहीं होते, वे परिस्थितियों से फलित होते हैं। तुम अगर जैतून के पेड़ हिन्दुस्तान में लगाओगे तो नहीं लगेंगे। केला यदि तुम बेल्जियम में लगाओगे तो नहीं लगेगा।

आम अगर कुमाऊँ या गढ़वाल में लगाओगे तो नहीं लगेगा। बीज तो है, जमीन भी है, परिस्थिति नहीं है। इसी तरह कुछ कर्म उपयुक्त परिस्थितियों में फलित होते हैं, कुछ सद्य:फलित होते हैं। किसी भी बंजर जमीन में लगा दो, थोड़ा बहुत कुछ तो निकल ही आयेगा।

मनुष्य के कर्म तीन प्रकार के होते हैं–संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध। ऐसा शास्त्र बताते हैं और समझ में भी आता है। कर्म क्या है? तुम्हारी कमाई। पाँच हजार रुपया बैंक में डाल दो, फिक्स्ड डिपॉसिट हो गया। उसको संचित कर्म कहोगे और वह तुम्हें कब मिलेगा? जब उसकी मैच्यूरिटी होगी। कर्म का भी एक मैच्यूरिटी पीरियड होता है, उसके परिपक्व होने का एक समय होता है। कुछ कर्म क्रियमाण होते हैं। करेंट एकाउण्ट में चेक डाला, पैसा निकाला। और कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो मैच्यूरिटी के बाद इन्टरेस्ट के साथ मिलते हैं, उसको कहते हैं प्रारब्ध।

मनुष्य का संचित कर्म पर कोई अधिकार नहीं है। जो तुमने बैंक में 10% पर डिपोसिट कर दिया, वह मैच्यूरिटी पर तुमको मिलेगा, चाहे तुम्हें पसन्द हो या नापसन्द। मगर जो काम तुम अभी कर रहे हो, उसको चाहो तो रोक सकते हो, संयम के द्वारा, योग के द्वारा, ध्यान के द्वारा, प्रार्थना के द्वारा। माने आज के कर्म को बदल सकते हैं। पर कर्म के फल को नहीं बदल सकते और कर्म के फल को कहते हैं प्रारब्ध। आम के पेड़ से आम निकला तो वह फल हुआ न उसका? पेड़ को तो कुछ नहीं हुआ, पेड़ तो वही है न? उसी तरह तुम्हें क्या मिला, ब्याज मिला। वह है प्रारब्ध। कर्म से उत्पन्न होने वाले फल को प्रारब्ध कहते हैं, और उस प्रारब्ध को तो भोगना ही पड़ता है। चाहे श्रीराम हों, चाहे श्रीकृष्ण हों, चाहे स्वामी विवेकानन्द हों, भगवान भी यदि संसार में जन्म लेंगे तो उनको भी कर्म के आश्रित रहना पड़ेगा और कर्म के फल का भोग करना पड़ेगा। यह प्रकृति का अटल नियम है।

यह विषय बड़ा गहन है। इसको इतनी जल्दी समझाया नहीं जा सकता क्योंकि इसको समझने के लिये सबसे पहले तुम्हें यह जानना होगा कि तुम कौन हो। तुम बोस हो, चटर्जी हो, रमानी हो, कुछ भी हो, यह तो केवल तुम्हारे ऊपर का नाम है, मगर तुम थोड़े ही वह हो। तुम चटर्जी थोड़े ही हो। हाँ, किसी नाम से तो पुकारना ही पड़ेगा, नहीं तो क्या बोलेंगे, पर वह नाम तुम नहीं हो। यह शरीर जिसे स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कहा जाता है, यह तो केवल उपयोग के लिये है। मैं थोड़े ही स्वामी सत्यानन्द सरस्वती हूँ। यह शरीर आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल, इन पाँच तत्त्वों से बना है। इस शरीर के अन्दर मन है, मन के अन्दर बुद्धि है और बुद्धि के अन्दर आत्मा है। जैसे बीज के अन्दर पेड़ रहता है न, दिखता तो नहीं है, अन्दर शब्द को इस तरह से समझना।

वह जो आत्मा है, वह दिन को भी जागती है और रात को भी। वह कभी सोती नहीं है। यदि वह रात को सो जाये तो दूसरे दिन तुमको याद नहीं रहेगा कि तुम

बनर्जी हो, चक्रवर्ती हो या गोस्वामी हो। तुम जो दिनभर 'मैं-मैं-मैं' कहते हो वह आत्मा है, और उस आत्मा को जब शरीर के सम्बन्ध में पुकारते हैं तो वह जीवात्मा है। जब आत्मा शरीर के बन्धन से मुक्त होती है तो उसको परमात्मा कहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा में केवल आवरण का भेद है, और कोई फर्क नहीं। जैसे पानी से बर्फ बना और बर्फ से पानी, दोनों एक ही हैं। जब आत्मा जीवन-मरण के संसर्ग में रहती है तो उसे जीवात्मा कहते हैं। जब वह इन बन्धनों से मुक्त हो जाती है, अज्ञान से मुक्त हो जाती है, तब उसमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।

घड़े में भी पानी है, कुएँ में भी पानी है। तुम कहते हो यह घड़े का पानी है और वह कुएँ का पानी है, मगर घड़े को अगर तुम तोड़ दो तो दोनों पानी एक होता है—'फूटा कुम्भ जल जल ही समाना'। यह घड़ा जिसे तोड़ना है माया का घड़ा है। इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि शरीर रहते हुए भगवद्-भजन जरूर करना चाहिये। यह मुख्य चीज है और दूसरी चीज, परमार्थ का कार्य करना चाहिये। परमार्थ माने दूसरे के लिये। अपनों के लिए, अपने बेटा-बेटी, चाचा-मामा के लिये जो काम करते हो वह स्वार्थ है। मगर रास्ते चलते किसी को खाना खिलाते हो, किसी को कपड़ा देते हो, किसी को रास्ता दिखा देते हो, वह तुम्हारा तो है नहीं, पता नहीं कौन था, उसको परमार्थ कहते हैं। दूसरों के लिये परमार्थ करना, यह ईश्वर तक पहुँचने का सबसे सरल रास्ता है। इसलिये सब साधु-महात्मा कहते हैं कि भगवद्-भजन के साथ परमार्थ का भी काम करो। किसी को खाना खिलाते हैं, अनाथालय में पैसा देते हैं, कपड़ा देते हैं, यह परमार्थ का काम है। अगर हम किसी को कम्बल देते हैं, खाना खिलाते हैं, हमें क्या मिलता है? वह तो हमारा बटुआ खाली हुआ न, मगर उससे जो हमको मिलता है वह दिखाई नहीं देता। आखिर उस मनुष्य के अन्दर भी ईश्वर है, वह ईश्वर पहचानता है कि आदमी क्या कर रहा है। तुम्हारे अन्दर भी ईश्वर है जो जानता है कि मैं तुम्हें क्या कष्ट दे रहा हूँ।

स्वामीजी, क्या मरने के समय बहुत कष्ट होता है?

नहीं।

जब हम श्वास रोककर पानी के अन्दर जाते हैं तो कितनी तकलीफ होती है! तब क्या मरते समय तकलीफ नहीं होती होगी? हार्ट अटैक में?

नहीं, हार्ट अटैक तो मृत्यु की सबसे पीड़ारहित स्थिति है, क्योंकि वह अनायास होता है। हार्ट अटैक का मतलब होता है मोटर बन्द हो गई। पम्प चल रहा था, बिजली की करेन्ट गई तो मोटर बन्द, कुछ पता नहीं चला हमको।

खैर अभी बात चल रही है मृत्यु की, हार्ट अटैक की नहीं। मृत्यु एक क्षण में आती है। वह मनुष्य के हाथ में नहीं है, वह किसी के भी हाथ में नहीं है। हवाई-

जहाज से गिरकर भी आदमी जिन्दा रहता है और रिक्शे से गिरकर आदमी मर जाता है। मृत्यु किसी भी कर्म करने वाले के हाथ में नहीं है, मृत्यु भगवान के हाथ में है। इसके लिये कोई निश्चित समय भी नहीं है। मृत्यु को टाला भी जा सकता है। इसलिये हमारे यहाँ अकाल मृत्यु, दीर्घ आयु, चिरंजीव जैसे शब्द आते हैं। चिरंजीव माने जितना दिन उसे रहना चाहिये उससे ज्यादा जिये, अल्प आयु माने जितना दिन तुमको जीना चाहिये उसके पहले मृत्यु।

मृत्यु एक संक्रमण है, परिवर्तन है, एक ट्रेन से दूसरी ट्रेन पकड़ना, टीवी पर एक धारावाहिक खत्म होने के बाद दूसरा शुरू होना। अब चूँकि हमारा प्रिय व्यक्ति चला गया तो उसके वियोग का दु:ख जरूर होता है, मगर मृत्यु स्वयं दु:ख का कारण नहीं है। मृत्यु में जो दु:ख होता है वह इसलिये होता है कि हमारा प्रिय चला गया, हमारा पालन-पोषण करने वाला चला गया या हमारा इकलौता भाई चला गया। दु:ख का कारण वह है।

एक संत थे जो हमेशा हँसते ही रहते थे। जब उनके मरने का समय आया तो लोगों से कहा, तुम खूब हँसते ही रहना, रोना नहीं। जब वे मरे तो लोगों को दु:ख हुआ, कुछ रोने भी लगे। उनके शव को जब चिता पर रखा और जैसे ही आग दी तो उनके शरीर से पटाखे फूटने लगे। मरने के पहले उन्होंने अपने कपड़े के अन्दर पटाखे डाल दिये थे। वे फूटने लगे तो लोग खूब हँसने लगे। इसलिये हमारे यहाँ जब कोई मरता है तो गाना बजाते हैं। गाना बजाने का नियम दु:ख को दूर करने के लिये है। ऐसे और कई प्रकार के नियम हमारी परम्परा में बताये गये हैं।

क्या मृत्यु के बाद कुछ याद रहता है?

नहीं, मृत्यु के बाद तो कुछ याद नहीं रहता, क्योंकि आदमी जब मरता है तो उसकी चेतना लुप्त हो जाती है। हाँ, कुछ साधु-महात्मा जब शरीर छोड़ते हैं, तो उन्हें उसके बाद भी सूक्ष्म रूप में याद रहता है। और जो लोग अत्यन्त दु:ख से मरते हैं, भयंकर स्थिति में मरते हैं, उनको भी मृत्यु के बाद कुछ दिन तक याद रहता है, जिसको भूत-प्रेत कहते हैं। मगर सामान्य रूप से याद नहीं रहता। प्राय: छोटे शिशु को दो-तीन साल तक याद रहता है। अगर उन शिशुओं से ठीक ढंग से बात करो तो कुछ अजीब-अजीब बातें बोलते हैं, और तीन साल के बाद सब भूल जाते हैं।

हमने कई लोगों से मुलाकात की है, आज नहीं, चालीस-पचास साल हो गये, जिनको अपने पूर्वजन्म की याद रहती थी। कुछ मामलों में तो कचहरी के मुकदमे भी हुये हैं। एक लड़की थी, बहुत छोटी, गोद की बच्ची। वह जब वृन्दावन-मथुरा जा रही थी तो उसने अपने पिता से कहा, 'यह हमारा घर है' और उसी घर पर अटक गई, आगे जाए ही नहीं। उसे घर के अन्दर ले गये तो उसने सब लोगों को

पहचान लिया, सास है तो यह है तो वह है। सामान वगैरह सब पहचान लिया। घर के लोगों ने सोचा, ये कुछ बदमाशी करने आये हैं, और मुकदमा कर दिया। इस मुकदमे में यह सवाल उठा कि आखिर यह ऐसा क्यों बोल रही है? फिर तीन संन्यासियों को सहमति के लिये बुलाया गया। स्वामी रामदास दक्षिण भारत के थे, एक हमारे गुरु जी थे, तीसरे कोई और स्वामी थे। तीनों संन्यासियों ने इस बात का अनुमोदन किया कि पुनर्जन्म होता है। इस लड़की को ज्ञान था, इसलिए जब वहाँ गई तो उसने घर के लोगों को पहचान लिया।

ऐसे ही धनबाद के एक बड़े अधिकारी की पत्नी है, जिसे तीन जन्मों की याद है और तीनों जन्मों के लोगों से सम्बन्ध रख लिया है। उसका स्वभाव भी एक सामान्य स्त्री की तरह नहीं है, हमेशा मस्त रहती है। मेरे कहने का यह मतलब कि कुछ लोगों को पूर्वजन्म याद रहता है। बचपन में तो प्राय: सबको याद रहता है और वैसे बिना याद होते हुए भी एक-दूसरे के प्रति आकर्षण-विकर्षण तो रहता ही है न? यह पूर्वजन्म का ही संकेत है।

अब अपनी ही छोटी-सी बात बताऊँ? मेरा तो देवघर आने का कोई प्रोग्राम ही नहीं था। मेरे पास इतनी जमीन-जायजाद है कि हिसाब नहीं लगा सकते हो। गंगोत्री में मेरी गुफा अभी तक है, बन्द पड़ी है। कोई जा भी नहीं सकता। माउण्ट आबू में मेरी कुटिया बन्द पड़ी है। ऋषिकेश में मेरा मकान बना पड़ा है। मुँगेर में तो मेरा अखाड़ा अलग से है, एकदम अलग। मेरे पास तो इतनी सम्भावनाएँ थीं, और अगर यहीं आने का पहले से प्रोग्राम होता तो मैं सीधे मुँगेर से आ जाता। मुझे तो कहीं जाने की जरूरत नहीं थी। और फिर मैं अपने अखाड़े का वरिष्ठ संन्यासी हूँ।

हमारा अखाड़ा निरंजनी है, और हमारे अखाड़े के जो प्रमुख हैं, स्वामी पुण्यानन्द गिरि जी महाराज, वे मेरे सामने आसन पर नहीं बैठते, उनको बहुत शरम लगती है। हम किसी भी अखाड़े में जाकर बैठ सकते हैं, फिर हम यहाँ किसलिये आये? यह अब कौन बताये? क्या यहाँ के लोगों के साथ मेरा पूर्वजन्म का सम्बन्ध था?

हमारा तो यहाँ आने का कोई प्रोग्राम था ही नहीं, और मजे की बात यह कि यहीं से करीब चालीस-पचास मील की दूरी पर डाका मोड़ है जहाँ हमारे नाम की करीब डेढ़ सौ एकड़ जमीन है। अभी भी पड़ी हुई है। लोग बार-बार आते हैं, कहते हैं कुछ बनायेंगे, कुछ बनायेंगे। धनबाद में तो चौदह एकड़ जमीन है, मैं वहाँ जाता ही नहीं, बस दो स्वामी रहते हैं वहाँ। फिर यहाँ क्यों आया? बात आ रही है न समझ में? जन्म-जन्म का कुछ ऐसा सम्बन्ध होता है जो मनुष्य को वहाँ पर खींचकर ले जाता है। व्यक्ति स्वेच्छा से नहीं जाता।

देवघर तो मेरे दिमाग में था ही नहीं। जब त्र्यम्बकेश्वर में मुझे बोला गया कि चिताभूमि में जाओ, तब स्वामी सत्संगी से कहा, 'जाओ, देवघर में जमीन देखो, वहीं का निर्देश हुआ है, वहीं जाऊँगा।' 8 सितम्बर को त्र्यम्बकेश्वर में यह बात कही, वह तुरंत प्लेन से आई पटना, पटना से कार से आई, 9 तारीख को यहाँ पहुँची। 10 तारीख को यह जमीन उसे किसी पण्डे ने दिखलाई, इसके मालिक से बातचीत हुई और 12 तारीख को सारे कागजात तैयार हुए कलकत्ता में, क्योंकि यहाँ हड़ताल थी। चार दिन में जमीन की खरीद-बेच होते देखी है? सगे भाइयों की जमीन एक-दूसरे के नाम हस्तान्तरित नहीं हो सकती चार दिन में! और यही सामने की जमीन लेने में बात करते-करते साल निकल गया। जबकि वे लोग जान-पहचान वाले थे। वे भी हाँ कहते थे, हम भी हाँ कहते थे, पर कभी उनकी बहन गायब है, तो कभी उनका बेटा गायब है, कभी माँ कहीं गई हुई है, वह जुगाड़ नहीं हो पा रहा था। यहाँ फट से हुआ। ऐसा संयोग जो होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है। तब हमें मानना पड़ता है कि नहीं, हमारा कर्म रिखिया में लिखा हुआ है। हमने इसकी इच्छा नहीं की, पर हमें यहाँ आना पड़ा। हमने इसके लिये परिश्रम नहीं किया, हमें स्वत: प्राप्त हो गया। इसके अलावा और भी कई संकेत मिले हैं। हो सकता है, यहाँ कोई मेरी माँ हो, बहन हो, भाई हो, कहीं का कुछ रहा होगा। कहीं-न-कहीं कोई सम्बन्ध जरूर है।

कृष्णमूर्ति ने एक जगह लिखा है, 'जब तक तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं तब तक तुम किसी से प्रेम नहीं कर सकते।' इसको हम समझ नहीं पाये?

यह तो ठीक बात है, मानते हैं। जब आदमी के अपने अरमान होते हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं और उन्हें पूरा करने की कोशिश करता है, तब उस समय वह न तो अपने पुत्र, न अपने भाई, न अपने पिता, न अपनी पत्नी, किसी से भी

प्रेम नहीं कर सकता। उसके लिये महत्त्वाकांक्षा ही सर्वोपरि हो जाती है, चाहे वह नेता बनने की हो, चाहे धन कमाने की हो, चाहे ज्ञान प्राप्त करने की हो।

यह भी तो हो सकता है कि बच्चों को पढ़ाने-लिखाने, बड़ा करने के कारण व्यक्ति प्रेम न कर पाए?

नहीं, बच्चों को पढ़ाना, बड़ा करना, स्त्री को सुखी रखना, पति की सेवा करना, यह महत्त्वाकांक्षा नहीं, कर्तव्य है। कर्तव्य वह है जो तुमको करना चाहिये, महत्त्वाकांक्षा वह है जो तुमको चाहिये। महत्त्वाकांक्षा उसको कहते हैं जिसका होना जरूरी नहीं है, मगर तुम कर रहे हो, और कर्तव्य उसको कहते हैं जिसे तुम चाहो या न चाहो, मगर तुम्हारा करना जरूरी है। कर्तव्य एक धर्म है, महत्त्वाकांक्षा धर्म नहीं है। महत्त्वाकांक्षा दूसरों को देखकर होती है। तुम किसी अमीर को देखते हो तो तुम्हें भी धन की आकांक्षा होती है। तुम किसी नेता या मंत्री को देखते हो, तो तुमको पद-प्रतिष्ठा की आकांक्षा होती है। महत्त्व की प्राप्ति की इच्छा को महत्त्वाकांक्षा कहते हैं। लेकिन अगर तुम बेटा-बेटी को पढ़ाते हो या अपनी स्त्री या माता-पिता या भाई-बहनों के लिये कुछ करते हो वह अपने महत्त्व के लिये नहीं करते हो, वह तो तुम्हारा एक दायित्व है, पसन्द नहीं भी आयेगा तो भी करोगे।

कर्तव्य और महत्त्वाकांक्षा में बड़ा भारी अन्तर है। जो कर्तव्यनिष्ठ होते हैं उन्हें एक-दूसरे से प्रेम रहता है, जबकि महत्त्वाकांक्षा वाला आदमी सच्चे दिल से किसी से प्यार नहीं कर सकता। जितने भी महत्त्वाकांक्षी होते हैं वे स्वार्थी होते हैं, यह मेरा अनुभव रहा है। इतने सालों में मैंने जिस-जिस में महत्त्वाकांक्षा देखी, उसमें स्वार्थ भी देखा है। आखिर हमें तो लोगों को देखते-देखते पचास-साठ साल हो गये हैं। जिन शिष्यों में हमने महत्त्वाकांक्षा नहीं देखी, जो केवल अपना कर्तव्य, अपनी ड्यूटी करते हैं, उनमें हमने देखा प्रेम। दूसरों का उन्हें ख्याल रहता है, वे दूसरों के प्रति अपना दायित्व पूरा करना चाहते हैं। दूसरी ओर महत्त्वाकांक्षी लोगों को केवल अपनी महत्त्वाकांक्षा से मतलब रहता है। उनको तुमसे-हमसे कोई मतलब नहीं। वे तो फिर गुरु को भी, अपने माता-पिता, पति-पत्नी को भी भूल जाते हैं। पर ऐसी बात भी नहीं कि महत्त्वाकांक्षा बिल्कुल खराब चीज है, मैं उसका अवमूल्यन नहीं कर रहा हूँ। वह मनुष्य का स्वभाव है क्योंकि हर व्यक्ति महत्त्व तो चाहता ही है।

महत्त्वाकांक्षा आध्यात्मिक जीवन में बाधा है क्या?

हाँ, महत्त्वाकांक्षा आध्यात्मिक जीवन में बहुत बड़ी बाधा है। जैसे हम आध्यात्मिक जीवन जी रहे हैं, इस वक्त अगर हम चाहें कि बहुत मान-सम्मान मिल जाए, लोग हमको मानने लगें, तो वह हमारे आध्यात्मिक जीवन में बाधा बनेगा।

मैं स्कूल में मन लगाकर पढ़ाता हूँ तो काफी यश मिलने लगा है और ज्यादा विद्यार्थी आने लगे हैं। जब लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, तब बहुत उत्साह मिलता है। क्या यह कर्तव्य है या महत्त्वाकांक्षा?

नहीं, यह तो तुम एक शिक्षक का कर्तव्य निभा रहे हो। जब प्रशंसा होने लगे तो समय-समय पर अपना निरीक्षण करना पड़ता है। जैसे घर साफ करने के लिये समय-समय पर झाड़ू लगाते हैं, वैसे समय-समय पर आत्म-निरीक्षण करना चाहिये, सोचना चाहिये, 'छोड़ो हम तो मात्र शिक्षक हैं।' जैसे माता-पिता या बेटा-बेटी का कर्तव्य होता है, वैसे शिक्षक का भी एक कर्तव्य होता है, अपने विद्यार्थियों को मन लगाकर पढ़ाना। वह तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा नहीं, ड्यूटी है। अब लोग उस ड्यूटी की तारीफ करें, तुम्हें महत्त्व दें और वह महत्त्व तुम्हारे दिल में घुस जाये, तो खेल खतम। दुनिया में रहेंगे तो महत्त्व मिलेगा ही, मगर उसके कारण अपने मस्तिष्क को दूषित नहीं होने देना चाहिये। हमें मानना पड़ता है कि हम एक शिक्षक हैं, हमारा काम ही ऐसा है।

गठिया जैसे रोगों में मूत्र-चिकित्सा की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

मूत्र-चिकित्सा आज के समूचे समाज के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपचार-प्रणाली है। अभी तो जर्मनी में इस पर एक बहुत बड़ी संगोष्ठी होने जा रही है। यह हमारे प्राचीन

समाज में भी एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली रही है। हमारे यहाँ पहले मूत्र-चिकित्सा गाँव वगैरह में बहुत प्रचलित थी। यह हुई पहली बात।

दूसरी बात, मूत्र-चिकित्सा पर, जिसे अंग्रेजी में यूरिन थेरेपी कहते हैं, अच्छे-अच्छे डॉक्टरों द्वारा लिखी हुई अच्छी पुस्तकें हैं, इसलिए इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। आधुनिक यन्त्रों से आदमी के पेशाब की जाँच की गई है, उसके घटकों का पता लगाया गया है। कहीं पर भी पेशाब में दूषित द्रव्य या रोगाणु नहीं पाये गये हैं। यहाँ तक कि जो लोग बीमार हैं, जिन्हें टी.बी. या कैंसर की बीमारी है, उन लोगों के पेशाब में भी रोगाणु नहीं पाये गये। मतलब कोई आदमी महारोग से पीड़ित हो सकता है, पर उसका पेशाब शुद्ध है। उसमें रोग का कोई भी कीटाणु नहीं पाया गया है। जहाँ तक दुर्गन्ध का सवाल है, वह तो कोई बड़ी बात नहीं है, आखिर अस्पताल में भी कितनी दुर्गन्ध रहती है।

तीसरी बात, इसके लिए किसी जानकार आदमी से मार्गदर्शन लेना पड़ेगा। मैं मार्गदर्शन नहीं देता। इस विषय पर बहुत-सी किताबें लिखी गई हैं, उनमें बहुत-से नियम बताए गए हैं। कौन-सा भोजन करना है, कितने दिन उपवास करना है, यह सब किसी जानकार आदमी से ही सीखना होगा। ऐसे कई लोग हैं जो इसको जानते हैं, आपको बस पता लगाना है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री, मोरारजी देसाई तो रोज मूत्र लेते थे। जब भी हमसे मिलते थे तो पूछते थे, कोई नई जानकारी लाये हो क्या?

मूत्र-चिकित्सा को शास्त्रों में अमरोली कहते हैं, इसका वर्णन डामर-तंत्र के शिव-पार्वती संवाद में है। किस तरह से स्वमूत्र पीना चाहिये, किस तरह से इसकी मालिश करनी चाहिये, किस प्रकार का भोजन करना चाहिये, किस प्रकार के पात्र में इसको रखना चाहिये—ये सब नियम डामर-तंत्र में लिखे हुये हैं। अमरोली तंत्र साधना के अंतर्गत आती है। इसका अभ्यास हम सब साधु लोगों को करना पड़ता है। इससे रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। रोग का आक्रमण नहीं होता, सर्दी-खाँसी का दौरा नहीं पड़ता। आखिर हम लोगों को कम-से-कम तीन घण्टे एक आसन लगाकर बैठना पड़ता है। तीन घण्टे आसन में बैठना कितना मुश्किल है! मजे की बात क्या है, मेरे पास मच्छर बैठता ही नहीं है। उसे डर लगता है कि मुझे काटकर कहीं उसको ही मलेरिया न हो जाये! अमरोली से शरीर में एन्टिबायोटिक रसायन तैयार होता है, जो शरीर के रोग का समाधान खोजता है।

अमरोली करने का समय होता है उत्तरायण और दक्षिणायन के बीच में। माने 14 जनवरी और 16 जुलाई के बीच ही इसका अभ्यास करना पड़ता है, बाद में नहीं करना चाहिये। केवल ये छः महीने इसके लिये होते हैं। कर्क संक्रान्ति के बाद नहीं की जाती है। इसे सिर्फ किताब पढ़कर नहीं करना चाहिए। आखिर यह साधना है, बिना गुरु के नहीं करनी चाहिये।

—16 मार्च 1998, रिखियापीठ

यौगिक अध्ययन के अतुलनीय अनुभव

गंगा दर्शन में फरवरी से जून 2018 तक चातुर्मासिक यौगिक अध्ययन सत्र संचालित हुआ जिसमें 42 विद्यार्थियों ने भाग लिया। 10 जून को सत्यम् उद्यान मे उनका दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें कुछ विद्यार्थियों ने अपने अनुभव साझा किए –

यौगिक अध्ययन सत्र और आश्रम जीवन का अनुभव मेरे लिए बहुत सकारात्मक रहा। मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे अपने जीवन में यह स्वर्णिम अवसर मिला। सत्र के दौरान स्वामी निरंजनानन्द जी के दर्शन और सत्संगों का लाभ उठाने का अवसर बहुत बार प्राप्त हुआ। हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के विषयों के बारे में विस्तार से जानने और समझने को मिला और ज्ञात हुआ कि इनका सामंजस्य होने पर कैसे हम अपने जीवन का उत्थान कर सकते हैं। यहाँ मैंने अपने आप को और अधिक जाना-समझा, साथ ही अपने विचारों के प्रति थोड़ा सजग बना। समय प्रबंधन, अनुशासित दिनचर्या और जीवन में अनुशासन के महत्त्व को समझा। मेरे आत्मविश्वास, सकारात्मकता, ऊर्जा, एकाग्रता और सजगता में वृद्धि हुई है। मेरी प्रसन्नता का स्तर भी पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है और मेरा तनाव कम हो गया है। मैं accounts field से हूँ तो accounts की भाषा में मेरा अनुभव यह है कि मैंने अपने assets को बढ़ाया है और अपनी liabilities को कम किया है, मतलब अपनी सकारात्मकता को बढ़ाया है और अपनी नकारात्मकता को कम किया है। अन्त में मैं स्वामीजी, अपने सभी शिक्षकों, आश्रमवासियों और अपने सहपाठियों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने कदम-कदम पर मेरा साथ दिया और मुझे आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया।

– संन्यासी मंगलदेव, दुर्ग

अभी यहाँ हुए कार्यक्रम में हमलोगों ने जो कुछ प्रदर्शित किया वह तो आप लोगों ने देख लिया, लेकिन कुछ ऐसी भी चीज थी जो आप लोग नहीं देख पाये। वह है हमारे भीतर हुआ परिवर्तन, जिसे यहाँ पर दिखा नहीं सकते। जब हम यहाँ आये थे तो कुछ और थे, और अभी बहुत अलग। उसे दिखा तो नहीं सकते, वह यहाँ से बाहर निकलने पर ही पता चलेगा।

जब यहाँ शुरू में आये थे और कर्मयोग में कोई काम मिलता था तो लगता था कोई आसान काम मिल जाए जैसे किचन में आलू वगैरह छिलना जिसमें थोड़ी-सी बातचीत भी हो जाए। लेकिन धीरे-धीरे काम करने में मन लगने लगा और हर काम को पूरे मन से करने लगे। जैसे क्रिकेट खेलते समय दो-तीन घंटे

बहुत दौड़ते हैं पर थकते नहीं हैं, वैसे ही यहाँ काम करते हुए भी नहीं थकते थे। पहले कोई डाँट देता था तो पूरे दिन मन चंचल रहता था, दु:खी रहते थे। अब कोई डाँट देता है, कोई फर्क नहीं, थोड़ी देर बाद मन शान्त। पता नहीं कैसे, पर ये चीजें हुई हैं। अब इसको दिखा कैसे सकते हैं?

सत्संग के बारे में पहले हम सोचते थे कि इसमें बड़े-बड़े संत-महात्मा बड़ी-बड़ी बातें करते होंगे। यहाँ पर आकर सत्संग का तो अर्थ ही बदल गया। अपने सत्संग में स्वामीजी बताते हैं कि हमेशा खुश रहो, शान्त रहो और सजग रहो। जीवन में सजगता निश्चित रूप से बढ़ी है। यहाँ के अनुभव वाकई में अतुलनीय हैं। वह अनुभव जो हर क्षण हमें खुश रख सकता है, हर क्षण शान्त रख सकता है, वही सीखा यहाँ पर, जिसे दिखा तो नहीं सकते। जब आप यहाँ पर आश्रम और यौगिक जीवन में आओगे तो वे चीजें खुद आती चली जायेंगी।

यहाँ पर हम बहुत अच्छे से रहे, बहुत खुश रहे। घर की तो एक बार याद भी नहीं आई। यहीं पर सब लोग अपने से लगते थे, परिवार की तरह। यहाँ सब एक साथ लाईन में लगते हैं, एक साथ खाना खाते हैं। स्वामी लोग भी काम करते हैं, हमलोग भी साथ में काम करते हैं। शुरू में कोई हमें काम बताता था, अब तो लगता है कि किसी के बिना बोले पहले ही वह काम कर लें। सुन्दरकाण्ड पाठ के समय पहले लगता था कि काम करके थक गए हैं, अब कमरे में थोड़ा आराम कर लें। लेकिन एक-दो बार गये तो वहाँ भी अच्छा लगने लगा। बस यूँ कहें कि कोई कारण ही नहीं बचा था दु:खी होने का और दिनों-दिन मन शान्त व प्रसन्न होता गया। बस यही मुख्य अनुभव था जो हमारे अन्दर में है, उसे दिखा तो नहीं सकते।

– गौरव विशाल, भागलपुर

जब मैं यहाँ आई तो आश्रम जीवनशैली से पूरी तरह अनभिज्ञ थी। यहाँ की जानकारी मुझे एक परिचित से मिली जिन्होंने बताया कि यह योग अनुसंधान केन्द्र है। हाँ, योग सीखने की प्रेरणा मुझे स्कूल में ही मिली थी। बचपन में मैं बहुत बीमार रहती थी, मुझे ब्रॉन्काइटिस और निमोनिया था, मैं बहुत जल्दी थक

भी जाती थी। तब मेरी एक टीचर ने मुझे प्राणायाम की विधि बताई जिसका अभ्यास दो-तीन साल लगातार करने से मेरी यह बीमारी ठीक हो गई। किंतु उस वक्त मुझे श्वास-प्रश्वास की सजगता, मानसिक अवलोकन, प्राण ऊर्जा का प्रवाह इत्यादि के विषय में कुछ भी पता नहीं था। यहाँ आश्रम आने के बाद मुझे योग के विभिन्न आयामों जैसे हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि की जानकारी मिली, और अगर मैं आश्रम के वातावरण की बात करूँ तो मुझे यहाँ बिल्कुल वैसा ही लगा जैसा शायद ऋषि-मुनियों के समय में हुआ करता होगा। संन्यासियों के साथ रहना, विभिन्न देशों के लोगों के साथ कर्मयोग करना, अपने हर एक क्रियाकलाप के प्रति सजग होने का अनुभव मेरे लिए बहुत ही अद्भुत और अतुलनीय रहा। यहाँ योग के साथ-साथ सेवा और स्वाध्याय का, अपनी संस्कृति को समझने का अवसर मिला। मैं यह दावे के साथ कह सकती हूँ कि योगाश्रम संस्कारों का केन्द्र है।

स्वामीजी गुरु रूप में हमारे जीवन के मार्गदर्शक बने। उनके प्रेरणादायक सत्संगों एवं आश्रम की यौगिक जीवनशैली ने मेरे जीवन को नई दिशा प्रदान की है। यहाँ आश्रम में हमारे सभी योग शिक्षकों ने हमें प्रशिक्षित, प्रेरित और प्रोत्साहित किया। दुनिया में शायद ही कहीं ऐसा कोई संस्थान होगा जो व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा को इतने सूक्ष्म एवं सरल तरीके से बतलाता होगा। यहाँ आने के बाद मेरा आत्मविश्वास बहुत बढ़ा है। यहाँ रहकर मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि यौगिक जीवनशैली अपनाकर हम अपने जीवन को किस प्रकार सुव्यवस्थित कर सकते हैं।

– सुरभि कुमारी, मुंगेर

मैं जब आश्रम आया तो यही सोचता था कि आप लोग कैसे किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को बदल सकते हैं, वह भी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्तर पर, लेकिन आज ये बातें बिल्कुल सच लग रही हैं। मुझे एक कहानी याद आ रही है। एक चील के अण्डे को मुर्गियों के साथ रखा गया, समय

गुजरने पर अण्डा फूटा जिसमें से निकला चील का बच्चा। चील का बच्चा मुर्गियों के साथ पलने लगा। मुर्गी जैसे भोजन करती थी, जैसे चलती थी, चील भी वैसे ही करती थी। उसका सब रहन-सहन मुर्गियों की तरह हो गया। एक दिन उसने आसमान में उड़ता हुआ पक्षी देखा, और मुर्गियों से पूछा, आकाश में इतना ऊँचा जो उड़ रहा है, वह कौन-सा पक्षी है? मुर्गियों ने कहा कि वह चील है, तुम उसकी तरह नहीं उड़ सकते हो। इस तरह चील का बच्चा होते हुये भी उसने उस ऊँचाई पर उड़ने के बारे में सोचा नहीं।

आप लोग यहाँ पर जो माहौल देते हैं कि लोग अपनी क्षमताओं से बाहर निकलने के बारे में सोच सकते हैं, अपने आपको जान सकते हैं, उसके लिये मैं आपका बहुत आभारी हूँ, बस इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता।

–पिन्टू चौधरी, बक्सर

योग भारती, योग भारती, योग भारती नाम विख्याता
जो भी यहाँ है आता, सब कुछ पाता
योगी आकर योग साधता, रोगी आकर रोग मिटाता
मानसिक आधि राजयोग भगाता, शरीर की व्याधि हठयोग ले जाता
अध्यात्म मार्ग का पथिक भी आकर
कर्म, ज्ञान और भक्ति योग से पार हो जाता।

यहाँ का अनुशासन बड़ा ही न्यारा,
पहले लगता कठोर मगर अंत तक हो जाता बड़ा ही प्यारा,
अतिथि हो, पथिक या खोजकर्ता, यहाँ जो भी आता
कुछ-न-कुछ सीख कर ही जाता,
दुनिया में जो अच्छे कहलाते वे भी यहाँ आकर दंग हो जाते,
मानव-निर्माण का कार्य देखकर स्वामीजी का अभिनन्दन करते।

1956 में गंगा किनारे योगी आये
सत्यम् अपना नाम बताये
मुंगेर को योग नगरी बनाये
सबको योग का रहस्य बतलाये
कितने मरणासन्न जिलाये
बहुतों को व्यसन मुक्त कराये
बहुत लुटेरों को सही राह पर लाये
मानवता के कल्याण हेतु, एक दिव्य आत्मा का
आवाहन करके उन्हें बुलाये
वही दिव्य आत्मा आज स्वामी निरंजन जी कहलाये।

योग भारती योग भारती योग भारती नाम विख्याता
जो भी यहाँ है आता सब कुछ है पाता।

– सन्नी कुमार, मुजफ्फरपुर

यौगिक समन्वय

प्रो. रंजीत कुमार वर्मा, कुलपति, मुंगेर विश्वविद्यालय

बिहार सरकार ने सन् 2016 में विश्वविद्यालय स्थापना के अधिनियम में एक संशोधन किया और उसी में प्रावधान था कि मुंगेर में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए। मुंगेर में विश्वविद्यालय का खुलना, उसके पीछे कहीं-न-कहीं मुंगेर को योग धरती की जो ख्याति मिली, उसका बहुत बड़ा योगदान है, ऐसा मेरा मानना है। विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये मैं इस समस्त गंगा दर्शन योग संस्थान और इसके प्रेरणास्रोत परमहंस स्वामी निरंजनानन्द जी को साधुवाद देता हूँ कि उनकी प्रेरणा से विश्वविद्यालय का गठन हुआ। भले ही सीधे नहीं, पर कहीं-न-कहीं इसका प्रभाव अवश्य है और तब जाकर यह सम्भव हुआ। इसके लाभ भी मिलने शुरू हो गये हैं, जो समय आने पर स्पष्ट होंगे।

अभी विद्यार्थीगण विभिन्न आसनों व मुद्राओं के अभ्यास में अपनी प्रवीणता दिखा रहे थे। उसमें कितनी अच्छी सिनर्जी थी, कितना अच्छा समन्वय था! अगर कहीं सिनर्जी टूटती थी तो बीच में ॐ की प्रतिध्वनि होती थी। मेरी समझ में जीवन में यही होता है। एक उदाहरण देता हूँ। हम सड़क पर चलते हैं, पीछे ट्रक अचानक हॉर्न देता है, स्वयमेव पैर हमें बचाकर ले जाते हैं। अब सोचिये, सुना तो कान ने, लेकिन बचा लिया पाँव ने। यह है सिनर्जी या समांगीभाव, सभी अंग बराबर हैं, मिलकर काम करते हैं।

इस सिनर्जी को देख रहा था तो याद पड़ रहा था कि करीब पन्द्रह-बीस साल पहले रसायन शास्त्र में मार्कस थ्यौरी को नोबेल पुरस्कार मिला था। उसके बाद वैज्ञानिकों को रासायनिक अभिक्रिया की बड़ी अच्छी समझ हो गई जिससे संश्लेषण या पदार्थ बनाना आसान हो गया। कम लागत और कम रसायन के प्रयोग से अधिक प्रतिफल मिलने लगा और रसायन शास्त्र में बड़ी अद्‌भुत क्रांति आयी। उन्होंने देखा कि जब रासायनिक संश्लेषण होता है और पदार्थ के विभिन्न अणु आपस में मिलकर नये अणुओं का निर्माण करते हैं, यदि उस समय उनमें सिनर्जी रहे तो अणु अच्छे तरीके से, प्रभावशाली ढंग से आपस में मिलते हैं और नये का निर्माण करते हैं। इस सिनर्जी को समझाते हुए उन्होंने डांसिंग मौलीक्यूल्स, यानि नाचते हुए अणुओं की बात की। इस पूरे सिद्धांत में मूलत: बात सिनर्जी की थी। सारे अणु एक साथ काम करते हैं जैसे किसी संगीत कार्यक्रम में सभी कलाकार या जैसे आसन प्रदर्शन में आप सभी लोग। जब इस तरह का समन्वय हमारे शरीर में स्थापित होता है, जब शरीर और मस्तिष्क की रासायनिक अभिक्रियाएँ आपस में सिनर्जी में आती हैं तो प्रतिफल बड़ा प्रभावी होता है और बहुत ही अच्छे परिणाम आते हैं।

मैं दो दशकों से सोच रहा हूँ कि क्या योग से डी.एन.ए. डिफेक्ट दूर हो सकते हैं? जो परिणाम साहित्य में, अखबारों में या योगाभ्यासियों से आ रहे हैं, प्रमाण तो मिल रहे हैं, लेकिन वैज्ञानिक प्रमाण की आवश्यकता है। मैंने एक परिकल्पना की है कि डी.एन.ए. अणुओं में अगर सिनर्जी आ जाए तो यह परिवर्तन हो सकता है। योग से विभिन्न अंगों में, शरीर के अन्दर होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं में, विभिन्न रासायनिक स्त्रावों में सिनर्जी आती है और यह सिनर्जी आपके अन्दर जो विकृतियाँ आई हैं, चाहे वे डी.एन.ए. में क्यों न हों, उनमें सुधार होता है। यह सिनर्जी योग का बहुत बड़ा लाभ है, जिसकी व्याख्या मैं समझता हूँ रसायन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अच्छे ढंग से की जा सकती है। इस सिद्धान्त पर मैं निबन्ध भी तैयार कर रहा हूँ, लेकिन प्रायौगिक व्यवस्था की खोज में हूँ।

अब मैं आपका ध्यान दूसरे बिन्दु पर लाना चाहूँगा। आप चार महीने योग सीख कर जा रहे हैं। जीवन में देखा जाए तो हम आजन्म विद्यार्थी रहते हैं, हरेक व्यक्ति जाने-अनजाने कुछ-न-कुछ ग्रहण करता है अपने परिवेश से। लेकिन हम भूल जाते हैं कि मूलत: शिक्षण का मतलब क्या है। समाज में एक बड़ी भ्रांति है कि अगर मैंने किसी विद्यालय से एक सर्टिफिकेट ले लिया तो यह शिक्षण हो गया, हमारे पास कागज का एक टुकड़ा अगर आ गया तो हम नौकरी के योग्य हो गये। वह जमाना गया जब नालंदा या विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्य अगर मोहर लगाते थे कि यह विद्यार्थी किसी विषय में निष्णात हो गया तो हर जगह उसका सम्मान होता था। अगर वे अनुमोदित कर देते थे कि इसने आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की है तो चीन में, कोरिया में, कहीं भी उसका सम्मान होता था कि यह दवा देगा तो

सही देगा। लेकिन आज यह विश्वास हट गया है। फिर भी अगर उत्कृष्ट अध्यापन हो, उत्कृष्ट शिक्षा दी जाए तो उसकी विश्वसनीयता अवश्य होती है। आपको जो सर्टिफिकेट दिया गया है, वह इसका प्रमाण है। मैं समझता हूँ कि उसकी भी आवश्यकता नहीं। आप सिर्फ बतायेंगे कि हम बिहार योग भारती से सीखकर आये हैं, हमने चातुर्मासिक पाठ्यक्रम किया है तो लोग आप पर विश्वास करेंगे। इस संस्था की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक अलग पहचान है और इसके लिये मैं बिहार योग भारती एवं इससे जुड़े आप सभी लोगों को साधुवाद देता हूँ।

मैं सभी 42 विद्यार्थियों को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि योग का समावेश किस तरीके से अपनी दिनचर्या में, अपने व्यवहार में, अपने आचार-विचार में किया जाए, इसका जो प्रशिक्षण आपको दिया गया, उसका आप अक्षरश: अनुपालन करेंगे। इतना ही नहीं, आप जहाँ भी जायें, अपने ज्ञान का प्रसार-प्रचार भी करें, अपने परिवार में, अपने मित्रों के बीच। आप जहाँ भी रहें उस स्थान को उत्कृष्टता दें, उसे रहने योग्य और अच्छी जगह बनाएँ। अपने आसपास के लोगों को प्रेरित करें कि अच्छे आचार-विचार को आत्मसात् करें। आप सभी इसी तरह मुस्कुराते रहें और जीवन को उसी सहजता और उसी सरलता से जीयें जिसका प्रशिक्षण आपको दिया गया है। मैं फिर से साधुवाद देता हूँ स्वामी निरंजनानन्द जी को जिन्होंने मुझे यह सौभाग्य दिया कि मैं आज यहाँ पर आपके बीच उपस्थित हो सकूँ। मैं तो खो गया था आनन्द में। चाहे वह भजन-कीर्तन हो या कोई अन्य गतिविधि, आपस में सभी किस तरीके से जुड़ रहे थे, किस तरीके से सिनर्जी हो रही थी, वह देखते ही बनता था। आप ताली बजाते तो सभी उसमें खो जाते, ॐ का उच्चारण करते तो सभी एक साथ श्वास लेते। यहाँ पर बहुत ही सुन्दर सिनर्जी आई। योग से आपने जो कुछ सीखा है उसके माध्यम से आप यह सिनर्जी अपने-अपने परिवेश में, अपने परिवार में, अपने मित्रों के बीच और जहाँ तक हो सके इस पूरे विश्व में स्थापित कीजिये। इन्हीं शब्दों के साथ मैं पुन: आप लोगों को बधाई और साधुवाद देता हूँ।

–10 जून 2018, यौगिक अध्ययन सत्र दीक्षान्त समारोह, गंगा दर्शन

दीक्षान्त संदेश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत यह यौगिक कार्यक्रम देखकर बहुत आनन्द आया। आप सबका यहाँ पर योगासनों का जो प्रदर्शन रहा, आप लोगों ने जिस तरह अपनी भावनाओं को व्यक्त किया और भजन-कीर्तन किये, सबको देखकर मन बहुत प्रफुल्लित हो उठा। सबसे अच्छी बात हमें वह लगी जो एक विद्यार्थी ने कही, कि जो वास्तव में हमें यहाँ प्राप्त हुआ वह हम दिखा नहीं सकते हैं। इस पूरे कार्यक्रम में मुझे वही वाक्य सुनने की इच्छी थी।

साठ के दशक से बिहार योग विद्यालय यहाँ पर योग प्रशिक्षण का कार्य कर रहा है। योग को एक वैज्ञानिक, प्रायौगिक एवं व्यावहारिक रूप से अपनाने के लिये सन् 1994 में बिहार योग भारती की स्थापना की गई थी। इसे एक डीम्ड यूनिवर्सिटी का स्टेटस भी मिला, और हमलोगों ने इस प्रथम योग विश्वविद्यालय के माध्यम से योग की विद्या, परम्परा और जीवनशैली को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। बिहार योग भारती के अन्तर्गत तीन विभागों की स्थापना की गई जिसमें पहला था योग दर्शन, दूसरा था योग मनोविज्ञान और तीसरा था प्रायौगिक योग। चौथा विभाग, जिसकी हमलोग व्यवस्था कर रहे थे, यौगिक पर्यावरण था।

जहाँ तक योग का सवाल है, आज समाज में योग की जो पद्धति प्रचलित है और हमारी संस्कृति में योग की जो परम्परा व शिक्षा रही है, दोनों में अन्तर है। बिहार

योग विद्यालय एक ऐसी संस्था है जो आज योग विद्या के उत्थान हेतु प्रयत्नशील है, और इसलिये हम इसे योग केन्द्र नहीं कहते जहाँ पर लोग आकर योग सीखें, बल्कि इसे योग अनुसंधान केन्द्र कहते हैं जहाँ योग पर अनुसंधान होता है। परम्परा और शास्त्रों में जो चीजें कही गई हैं, यौगिक उपनिषदों और साहित्यों में जिन चीजों का उल्लेख है, उनका यहाँ अन्वेषण करके आधुनिक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। पूरे भारत में बिहार योग विद्यालय ही एक ऐसी संस्था है जो योग के नवीन आविष्कारों को प्रतिवर्ष समाज के सामने प्रस्तुत करती है। हम किस प्रकार योग को समाज के उत्थान हेतु, व्यक्ति की रचनात्मक प्रतिभा की जागृति हेतु लोगों के बीच ला सकें, यह यहाँ के प्रायौगिक योग कार्यक्रम का निरंतर प्रयास रहता है। चाहे वह सेना हो, रेलवे हो, औद्योगिक प्रतिष्ठान हों, चिकित्सालय हों, कारागार हों, विद्यालय-महाविद्यालय हों—हमलोग सभी जगह जाकर आवश्यकता अनुरूप योग की शिक्षा प्रदान करते हैं।

योग के तीन प्रयोजन

योग को तीन रूपों में समझ सकते हैं। योग का पहला प्रयोजन स्वास्थ्य की उत्तमता से सम्बन्ध रखता है—शारीरिक, मानिसक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य। इसके लिये हठयोग के अभ्यास हैं जो आपके शरीर, प्राण और मन तक की पूरी व्यवस्था करते हैं। समाज में आज हम योग का यही पक्ष देखते हैं, चाहे वह टी.वी. के माध्यम से हो या उन शिक्षकों के माध्यम से जो घर-घर जाकर योग सिखाते हैं। वे मुख्य रूप से स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चा ही करते हैं और हठयोग को ही आधार बनाते हैं—'यह आसन करोगे तो यह फायदा होगा, यह करोगे तो इस बीमारी से मुक्ति मिलेगी।' अभी वे योग को सर्वांगीण नहीं बना पाये हैं, केवल शारीरिक स्तर तक ही सीमित कर दिये हैं।

यह योग का एक पक्ष है जो पूर्ण स्वास्थ्य के लिये निश्चित रूप से लाभदायक है। इसको अगर ठीक से किया जाये तो घातक रोग भी ठीक हो जाते हैं। हमलोगों ने तो प्रयोग करके देखा है। कैंसर और एच.आई.वी., जिन्हें हमलोग घातक बीमारी कहते हैं, वे ठीक हो जाती हैं। हमारे गुरुजी कहते थे, 'योग चमत्कार नहीं, अनुशासन है। अगर इसका ठीक तरीके से पालन किया जाए तो कोई भी ऐसा रोग नहीं है जिसे हम असाध्य कह सकें।' आखिर रोग का जन्म शरीर से होता है और शरीर को अगर हम स्वस्थ रख सकें तब फिर रोग का कारण ही उत्पन्न नहीं होगा। यह हुआ योग का पहला पक्ष।

दूसरा पक्ष हुआ रचनात्मक प्रतिभा का विकास। स्वामी शिवानन्द जी का यही उद्घोष रहा है—बुद्धि, भावना और कर्म के लिए योग। मस्तिष्क, हृदय और हाथों की प्रतिभा के विकास के लिये योगाभ्यास होना है। इसकी पहुँच शरीर, प्राण, मन

और चेतना तक है। मतलब चार कोषों पर इसका असर होता है। यह है राजयोग, अपने मन की सुषुप्त प्रतिभाओं को विकसित करने के लिये।

योग का तीसरा पक्ष आध्यात्मिक और अतीन्द्रिय है, जिसमें क्रिया योग, कुण्डलिनी योग, लय योग, नाद योग और मंत्र योग जैसे उच्च योग अभ्यास आते हैं। ये जीवन में एक नये अनुभव, आचरण, गुण, दर्शन और जीवनशैली को प्रकट करने की क्षमता रखते हैं।

योग के ये तीन पक्ष होते हैं—सम्पूर्ण स्वास्थ्य, रचनात्मक क्षमताओं की वृद्धि और आध्यात्मिक जागृति एवं उपलब्धि। समाज में, यहाँ तक की भारत के सभी योग केन्द्रों में प्रथम पक्ष पर ही जोर दिया गया है, द्वितीय और तृतीय पर नहीं। मुंगेर योगाश्रम ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पर प्रथम, द्वितीय और तृतीय, तीनों को समान रूप से देखने का प्रयास किया जाता है।

अनुशासन और संयम

योग में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है अनुशासन। अनुशासन को लोग बंधन समझते हैं, सोचते हैं कि अनुशासन बाहर से आरोपित किया जाता है। लेकिन वास्तव में अनुशासन बंधन नहीं है। यह तो जीवन की एक सहज अवस्था है जिसे हमलोग संयम भी कहते हैं। योग, चाहे वह स्वास्थ्य के लिये हो या रचनात्मक प्रवृत्ति के विकास के लिये या आध्यात्मिक अनुभव के लिये, इसका मूलमंत्र है संयम। वह संयम इन्द्रियों में, मन में, बुद्धि में, भावनाओं में, सभी अवस्थाओं में हमें लाना है। वही योग की असली प्राप्ति है, जिसे एक विद्यार्थी कह रहा था कि दिखा नहीं सकते।

आसन तो कोई भी कर सकता है, बल्कि हमलोगों से अच्छे तो सर्कस में लोग आसन करते हैं। हाँ, आसनों में परिपक्व होना अच्छी चीज है, क्योंकि जब तक आसनों में परिपक्वता नहीं होती तब तक उनके लाभ भी कम प्राप्त होते हैं। लेकिन

साथ ही अपने जीवन में अनुशासन को लाने का भी प्रयास करना होगा और वह आता है छोटे-छोटे कार्यों से। क्या तुम लोग घर में अपने कपड़े धोते हो? नहीं। अपना चाय का प्याला रसोई में धोकर उसे यथास्थान रखते हो क्या? नहीं। कौन करता है? या तो माँ करती है या बहन या दाई। तुम लोग क्यों नहीं करते? अब सोचने की चीज है। क्या इससे तुम्हारा स्टेटस कम होता है, क्या इससे तुमको लगता है कि मैं क्षुद्र कर्म कर रहा हूँ? हम खाना खाते हैं, लेकिन अपनी थाली उठाकर रसोई में नहीं रख सकते। हम जिस बिस्तर पर सोते हैं उसे सबेरे दाई आकर ठीक करती है, हम चादर को सँवार नहीं सकते। जो कपड़े हम पहनते हैं उसे कोई और धोता है, हमारे अन्दर धोने की क्षमता नहीं है, न जानकारी है कि कैसे धोते हैं। सोचते हैं कि केवल कपड़े को पानी में डुबा दो और उसको सुखा दो।

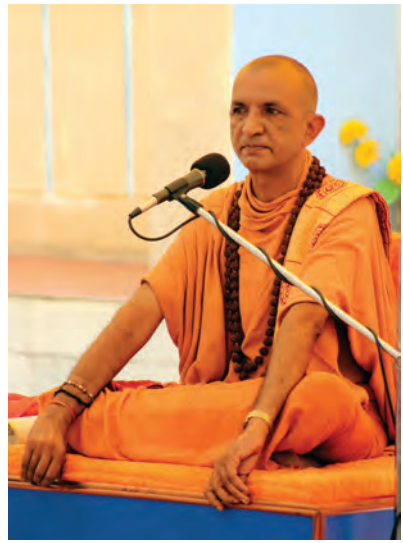

यह क्या दर्शाता है? यही कि मनुष्य के जीवन में व्यावहारिकता का अभाव है। आखिर किस हीन भावना से प्रेरित होते हो जब अपना कपड़ा नहीं धो पाते हो, अपनी थाली नहीं धो पाते हो? क्या यही तुम्हारे जीवन का अनुशासन, आदर्श और मर्यादा है या परिश्रमी बनना आवश्यक है? हमें तो हमारे गुरुजी ने परिश्रमी बनने की शिक्षा दी है। सबेरे से रात तक परिश्रम करो, अपना कपड़ा खुद धोना, अपना काम स्वयं करना। उसी से तो व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, नहीं तो हमेशा दूसरों पर आश्रित रहेगा और कभी कोई व्यावहारिक कार्य नहीं कर पायेगा।

अनुशासन और संयम, जिसे हम अध्यात्म का आधार मानते हैं, वह हमारे सम्पूर्ण जीवन का भी आधार है, जो हमें कर्म से भगाता नहीं, बल्कि कर्म से जोड़ता है, हमें व्यावहारिकता, पुरुषार्थ और परिश्रम से जोड़ता है। संयम ही भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का संबल बनता है, और जीवन में संयम की शुरुआत योगाभ्यास से होती है, छोटी-छोटी चीजों को करने और समझने से होती है।

कुछ दिन पहले मैंने एक छोटा-सा उदाहरण दिया था कि हमलोगों की सोच कितनी भ्रष्ट है। अगर हम किसी से सम्मानपूर्वक बात करें, उससे विचार-विमर्श करें, उसको अपना प्रेम और स्नेह दें, तो हम तो उसे एक अच्छी चीज दे रहे हैं, सद्भावना दे रहे हैं, लेकिन उसे प्राप्त करके दूसरा आदमी अहंकारी हो जाता है, घमण्डी हो जाता है। सोचता है कि मुझे ही मानते हैं और दूसरों पर अपना अधिकार

जमाने लगता है। कहता है कि मैं स्वामीजी का नजदीकी हूँ, तुम कौन होते हो कुछ कहने वाले। जिस व्यक्ति को हमारी ओर से सत्कार, प्रेम और सम्मान मिल रहा है, वही व्यक्ति उसे प्राप्त करके अगर दूसरों के प्रति अपने अहंकार और अड़ियलपन को व्यक्त कर रहा है तो क्या यह हमारी मानवता है? जिस प्रेम और सम्मान को प्राप्त करके हमें कृतज्ञ होना चाहिये कि हमें एक अवसर मिला है एक व्यक्ति से जुड़ने का, एक भाव से जुड़ने का, उसके सौन्दर्य को जानने-समझने का, वह कृतज्ञता का भाव तो हममें है नहीं। यह क्यों होता है? जो छोटा-सा सुख हमें प्राप्त हो रहा है, उसके बदले हम दूसरों को अपना अड़ियलपन और दु:ख ही देते हैं। किस कारण से? अनुशासन और संयम के अभाव के कारण।

हमारे जीवन में संयम रहे तो फिर हमारे द्वारा हमेशा उचित व्यवहार और उचित कर्म ही होगा। यही योग की शिक्षा है। ध्यान करो या न करो, फर्क नहीं पड़ता है। आसन करो, न करो, फर्क नहीं पड़ता है। वह तो हम अपनी संतुष्टि के लिये करते हैं। हाँ, इतना जरूर है कि स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, दर्द कम रहेगा, बुढ़ापे में ऊर्जा ज्यादा रहेगी, बीमारी नहीं होगी, इसलिए अच्छी चीज है, लेकिन वास्तविक परिवर्तन तो भावों में होना है, विचारों में होना है, अभिव्यक्ति में होना है। जब वह हो जाए तब मानना कि जीवन में योग सिद्ध हुआ।

आप लोगों का अब योग के क्षेत्र में प्रवेश हुआ है, प्रमाणपत्र भी मिल गया है और अब अपने ऊपर आपको शोध करना है, प्रयोग करना है। फिर दूसरों को बतलाना है, सिखलाना है ताकि वे लोग भी इसका फायदा उठा सकें। साथ ही परिश्रम मत छोड़ो, रोज सबेरे झाड़ू हाथ में लो, अपना कमरा साफ करो, अपना बिस्तर बिछाओ, अपनी थाली और कपड़े साफ करो– एक स्वतंत्र और अनुशासित जीवन व्यतीत करने का संकल्प लो। जब घर जाओ तब ऐसा न हो कि माँ कह रही है कि वह कर देगी इसलिये आराम से पड़े हो बिस्तर पर। कम-से-कम माँ पर भी रहम करो, वह तो तुम से ज्यादा उम्र वाली है और उनसे तुम सब कराते हो। अरे, वह तुम्हारे कपड़े साफ करती है, तुम एक दिन उनके कपड़े साफ कर दो, क्या हर्जा है! ऐसा होना चाहिये। फिर हम अपने जीवन में तन्दुरुस्ती और प्रसन्नता, दोनों को ला सकते हैं और जहाँ पर तन्दुरुस्ती और प्रसन्नता है वहाँ पर सुख और शान्ति भी है।

अंतिम बात, तुमलोगों का तो अपना काम-धाम, घर-परिवार, जिम्मेदारियाँ सब हैं, लेकिन जो लोग सक्षम हैं, एक निर्णय ले लेना। महीने में कम-से-कम एक दिन योग की कक्षा अपने क्षेत्र में सभी के लिये लेना, और अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के दिन तो निश्चित रूप से लेनी चाहिये। यह एक दायित्व आप लोगों को जाते-जाते दे रहे हैं। हरि: ॐ तत्सत्।

–10 जून 2018, यौगिक अध्ययन सत्र दीक्षान्त समारोह, गंगा दर्शन

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

_योगा_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

_योगविद्या_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2019

फरवरी 4-मई 26	चातुर्मासिक योग अध्ययन (हिन्दी)
फरवरी 6-8	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 9	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 18-24	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 18-24	योग कैप्सूल-गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
मार्च 1-30	एकमासिक योग प्रशिक्षण (हिन्दी)
मार्च 9-17	पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)
मार्च 11-17	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
अप्रैल 2-6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अप्रैल 22-28	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
मई 13-19	हठ योग यात्रा 3 एवं 4
जून 2-6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अगस्त 16-22	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अगस्त 23-29	राज योग यात्रा 3 एवं 4
अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1, 2 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 11-17	क्रिया योग यात्रा 3
दिसम्बर 18-22	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।